दैनिक जीवन में गणित

लोकोपयोगी विज्ञान

दैनिक जीवन में गणित

आर. एम. भागवत

चित्र

पवित्र घोष

अनुवाद

प्रदीप कुमार मुखर्जी

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय-सूची

	आभार	सात
	प्रस्तावना	नौ
1.	भूमिका	1
2.	संख्याएं	5
3.	चर राशियां	34
4.	अनुपात : वस्तुओं की तुलना	44
5.	आकार और स्वरूप	50
6.	त्रिकोणमिति	68
	संदर्भ ग्रंथ	74

माता-पिता को समर्पित

आभार

इस पुस्तक के लेखन के दौरान सभी प्रकार की सहायता एवं सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र (एच. बी. सी. एस. ई.) के भूतपूर्व निदेशक प्रो. वी. जी. कुलकर्णी एवं मुंबई के टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान (टी. आई. एफ. आर) को अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने में मुझे अति प्रसन्नता हो रही है। डा. एच. सी. प्रधान का मैं हृदय से आभारी हूं, जिन्होंने मुझे इस पुस्तक के लेखन के लिए प्रेरित किया। गहन रूप से पांडुलिपि को पढ़कर उन्होंने अपने बहुमूल्य सुझाव मुझे दिए। उनके सतत सहयोग एंवं उत्साहवर्धन के लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं। मुंबई स्थित कीर्ति कालेज की डा. सीमा पुरोहित ने पांडुलिपि को ध्यान से पढ़कर अपने कीमती सुझाव दिए। मैं हृदय से उनका आभार व्यक्त करता हूं। श्री अरुण मावलंकर जिन्होंने पांडुलिपि की प्रेस कापी तैयार करने का उत्तरदायित्व संभाला, श्रीमती वी. एन. पुरोहित जिन्होंने पांडुलिपि को कुशलतापूर्वक टाइप किया, श्री वी. एन. गुरव जिन्होंने वर्ड प्रोसेसर पर पांडुलिपि को उतारा तथा श्री शिवाजी नाडकर जिन्होंने सावधानीपूर्वक इसकी 'जेराक्स' काफी तैयार की, इन सभी के प्रति मैं अपना धन्यवाद व्यक्त करता हूं। होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र के स्टाफ के इन सभी सदस्यों ने मेरी बड़ी मदद की है। अपने ही परिवार के सदस्यों नीलेश, समीर, वृंदा तथा धनश्री को पांडुलिपि के लिए कुछ चित्र बनाने के लिए मैं धन्यवाद देता हूं। बाद में इन चित्रों का नेशनल बुक ट्रस्ट ने पुनअरिखण किया।

नेशनल बुक ट्रस्ट की संपादिका श्रीमती मंजु गुप्ता के मुझे लगातार उकसाते रहने के बगैर यह पुस्तक पूरी नहीं हो सकती थी। पुस्तक लेखन में हो रहे विलंब को भी उन्होंने धैर्यपूर्वक सहन किया। उनकी उदार सराहना और उत्साहवर्धन के लिए मैं हृदय से उन्हें धन्यवाद देता हूं।

आर. एम. भागवत

प्रस्तावना

गणित मानव मस्तिष्क की उपज है जिसका मानव गतिविधियों एवं प्रकृति के निरीक्षण द्वारा ही उद्‌भव हुआ। मानव मस्तिष्क की चिंतन प्रक्रियाओं के मूल में पैठ कर ही गणित मुखर रूप से उनकी अभिव्यक्ति करता है। वास्तविक संसार अवधारणाओं की दुनिया में बदल जाता है और गणित वास्तविक जगत को नियमित करने वाली मूर्त धारणाओं के पीछे काम करने वाले नियमों का अध्ययन करता है। ज्यादातर दैनिक जीवन का गणित इन मूल धारणाओं का ही सार है और इसलिए इसे आसानी से समझा-बूझा जा सकता है। हालांकि अधिकांश धारणाएं अंतःप्रज्ञा के द्वारा ही हम पर प्रकट होती हैं, फिर भी शुद्ध एवं संक्षेप रूप में उन धारणाओं को व्यक्त करने के लिए उचित शब्दावली एवं कुछ नियमों और प्रतीकों की आवश्यकता पड़ती है। अतः गणित की अपनी अलग ही भाषा एवं लिपि होती है जिसे पहले जानना-समझना जरूरी होता है। शायद यही कारण है कि दैनिक जीवन से असंबद्धित मानकर इसे समझने की दृष्टि से कठिन माना जाता है, जबकि हकीकत में यह वास्तविक जीवन के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा ही नहीं है, बल्कि उसी से इसकी उत्पत्ति भी हुई है। यह विडंबना ही है कि ज्यादातर लोग गणित के प्रति विमुखता दिखा कर उससे दूर भागते हैं, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि जीवन तथा ज्ञान के हर क्षेत्र में इसकी उपयोगिता है। यह केवल संयोग नहीं है कि आर्किमिडीज, न्यूटन, गौस और लैगरांज जैसे महान वैज्ञानिकों ने विज्ञान के साथ-साथ गणित में भी अपना महान योगदान दिया है।

मानव ज्ञान की कुछ प्राथमिक विधाओं में संभवतया गणित भी आता है, और यह मानव सभ्यता जितना ही पुराना है। मानव जीवन के विस्तार और इसमें जटिलताओं में वृद्धि के साथ गणित का भी विस्तार हुआ है और उसकी जटिलताएं भी बढ़ी हैं। सभ्यता के इतिहास के पूरे दौर में गुफा में रहने वाले मानव के सरल जीवन से लेकर आधुनिक काल के घोर जटिल एवं बहुआयामी मनुष्य तक आते-आते मानव जीवन में धीरे-धीरे परिवर्तन आया है। इसके साथ ही मानव ज्ञान-विज्ञान की एक व्यापक एवं समृद्ध शाखा के रूप में गणित का विकास भी हुआ है। हालांकि एक आम आदमी को एक हजार साल से बहुत अधिक पीछे के गणित के इतिहास से

उतना सरोकार नहीं होना चाहिए, परंतु वैज्ञानिक, गणितज्ञ, प्रौद्योगिकीविद्, अर्थशास्त्री एवं कई अन्य विशेषज्ञ रोजमर्रा के जीवन में गणित की समुन्नत प्रणालियों का किसी न किसी रूप में एक विशाल, अकल्पनीय पैमाने पर इस्तेमाल करते हैं। आजकल गणित दैनिक जीवन के साथ सर्वव्यापी रूप में समाया हुआ दिखता है।

अतः यह जरूरी हो जाता है कि जीवन के विविध क्षेत्रों से जुड़े लोग मानव की प्रगति में गणित के योगदान को समझ-बूझ कर उसकी सराहना करें। यह पुस्तक दैनिक जीवन में गणित के स्वरूप को सरल भाषा एवं जीवन से ही लिए गए दृष्टांतों के माध्यम से समझाने का कार्य करती है। गणित के ऐतिहासिक विकास का वर्णन इस बात पर बल देते हुए किया गया है कि दैनिक जीवन से जुड़ी साधारण-सी गतिविधियों से गणित का प्रादुर्भाव किस तरह से होता है तथा रोजमर्रा की समस्याओं का हल ढूंढ़ने में यह कैसे हमारी मदद करता है। हमारे लिए यह गौरव की बात है कि बारहवीं सदी तक गणित की सम्पूर्ण विकास-यात्रा में उसके उन्नयन के लिए किए गए सारे महत्वपूर्ण प्रयास अधिकांशतया भारतीय गणितज्ञों की खोजों पर ही आधारित थे। प्राचीन हिंदू गणितज्ञों के योगदान को पुस्तक में पूरी तरह रेखांकित किया गया है। इस तथ्य को भी कि गणित कुछ अमूर्त धारणाओं एवं नियमों का संकलन मात्र ही नहीं है, बल्कि दैनंदिन जीवन का मूलाधार है, दैनिक जीवन से संबद्ध अनेक समस्याओं के माध्यम से समझाया गया है। गणितीय शब्दावली एवं सूत्रों का न्यूनतम प्रयोग कर गणित के आवश्यक पहलुओं को सरल भाषा में पुस्तक में बताया गया है। अनेक रेखाचित्रों एवं छायाचित्रों के माध्यम से पुस्तक को भली-भांति सुसज्जित किया गया है। पुस्तक को रोचक और पठनीय बनाने के लिए हर संभव प्रयास किया गया है।

आशा है कि गणित को समझने-सराहने एवं उसके अध्ययन में पुस्तक पाठकों को जरूर प्रोत्साहित करेगी।

1

भूमिका

बहुत पुरातन काल से ही विषयों में गणित सर्वाधिक उपयोगी रहा है। 'मैथेमेटिक्स' शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'मैथेमेटा' से हुई है जिसका अर्थ है 'वस्तुएं (विषय) जिनका अध्ययन किया जाता है'। बीसवीं शताब्दी के प्रख्यात ब्रिटिश गणितज्ञ और दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल के अनुसार "गणित को एक ऐसे विषय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें हम जानते ही नहीं कि हम क्या कह रहे हैं, न ही हमें यह पता होता है कि जो हम कह रहे हैं वह सत्य भी है या नहीं।" यह परिभाषा वास्तविक जगत के बारे में कोई भी जानकारी नहीं दे पाती है, पर हमें यह जरूर बताती है कि एक वस्तु (तथ्य) के बाद दूसरी वस्तु के आने का एक निश्चित क्रम होता है। ज्ञान के किसी क्षेत्र विशेष में इस कथन का उपयोग अजीब या अटपटा लग सकता है, मगर यूनानी लोग गणित को न केवल संख्याओं और दिक् (स्पेस) का बल्कि खगोलविज्ञान और संगीत का भी अध्ययन मानते थे। बेशक अब हम खगोलविज्ञान और संगीत को गणित के विषय नहीं मानते, मगर फिर भी गणित का दायरा आज पहले से भी कहीं अधिक विस्तृत हुआ है।

गणित की उत्पत्ति कैसे हुई, यह आज इतिहास के पन्नों में ही विस्मृत है। मगर हमें मालूम है कि आज से 4000 वर्ष पहले बेबीलोन तथा मिस्र सभ्यताएं गणित का इस्तेमाल पंचांग (कैलेंडर) बनाने के लिए किया करती थीं जिससे उन्हें पूर्व जानकारी रहती थी कि कब फसल की बुआई की जानी चाहिए या कब नील नदी में बाढ़ आएगी, या फिर इसका प्रयोग वे वर्ग समीकरणों को हल करने के लिए किया करती थीं। उन्हें तो उस प्रमेय (थ्योरम) तक के बारे में जानकारी थी जिसका कि गलत श्रेय पाइथागोरस को दिया जाता है। उनकी संस्कृतियां कृषि पर आधारित थीं और उन्हें सितारों और ग्रहों के पथों के शुद्ध आलेखन और सर्वेक्षण के लिए सही तरीकों के ज्ञान की जरूरत थी। अंक गणित का प्रयोग व्यापार में रुपयों-पैसों और वस्तुओं के विनिमय या हिसाब-किताब रखने के लिए किया जाता था। ज्यामिति का इस्तेमाल खेतों के चारों तरफ की सीमाओं के निर्धारण तथा पिरामिड जैसे स्मारकों के निर्माण में होता था।

मिलेटस निवासी थेल्स (645-546 ईसा पूर्व) को ही सबसे पहला सैद्धांतिक गणितज्ञ माना जाता है। उसने बताया कि किसी भी वस्तु की ऊंचाई को मापन छड़ी द्वारा निक्षेपित परछाई से तुलना करके मापा जा सकता है (चित्र 1)। ऐसा मानते हैं कि उसने एक सूर्य ग्रहण के होने के बारे में भी भविष्यवाणी की थी। उसके शिष्य पाइथागोरस ने ज्यामिति को यूनानियों के बीच एक मान्य विज्ञान का स्वरूप दिलाकर यूक्लिड और आर्किमिडीज के लिए आगे का मार्ग प्रशस्त किया।

बेबीलोन निवासियों से विरासत में मिले ज्ञान में यूनानियों ने काफी वृद्धि की। इसके अलावा गणित को एक तर्कसंगत पद्धति के रूप में उन्होंने स्थापित भी किया – एक ऐसी पद्धति जिसमें कुछ मूल तथ्यों या धारणाओं को सत्य मानकर (जिन्हें प्रमेय कहते हैं) निष्कर्षों (जिन्हें उपपत्ति या प्रमाण कहते हैं) तक पहुंचा जाता है।

कुछ हद तक हम सब के सब गणितज्ञ हैं। अपने दैनिक जीवन में रोजाना ही हम गणित का इस्तेमाल करते हैं – उस वक्त जब समय जानने के लिए हम घड़ी देखते हैं, अपने खरीदे गए सामान या खरीदारी के बाद बचने वाली रेजगारी का हिसाब जोड़ते हैं या फिर फुटबाल, टेनिस या क्रिकेट खेलते समय बनने वाले स्कोर का लेखा-जोखा रखते हैं।

व्यवसाय और उद्योगों से जुड़ी लेखा संबंधी संक्रियाएं गणित पर ही आधारित हैं। बीमा (इंश्योरेंस) संबंधी गणनाएं तो अधिकांशतया ब्याज की चक्रवृद्धि दर पर
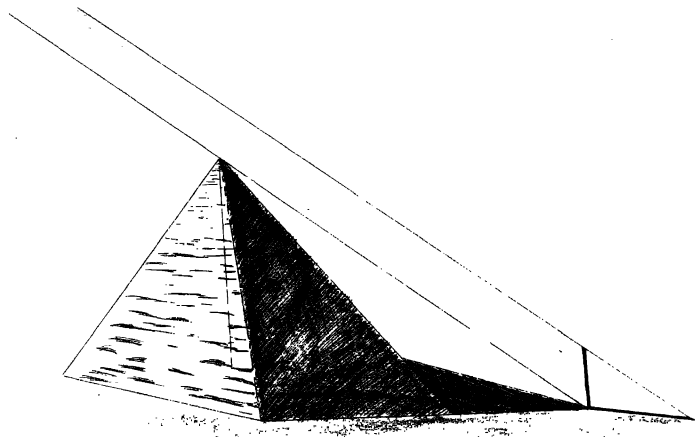
चित्र 1

ही निर्भर हैं। जलयान या विमान का चालक मार्ग के दिशा-निर्धारण के लिए ज्यामिति का प्रयोग करता है। सर्वेक्षण का तो अधिकांश कार्य ही त्रिकोणमिति पर आधारित होता है। यहां तक कि किसी चित्रकार के आरेखण कार्य में भी गणित मददगार होता है, जैसे कि संदर्श (पर्सपेक्टिव) में जिसमें कि चित्रकार को त्रिविमीय दुनिया में जिस तरह से इंसान और वस्तुएं असल में दिखाई पड़ते हैं, उन्हीं का तदनुरूप चित्रण वह समतल धरातल पर करता है (चित्र 2)। संगीत में स्वरग्राम तथा संनादी (हार्मोनी) और प्रतिबिंदु (काउंटरपाइंट) के सिद्धांत गणित पर ही आश्रित होते हैं। गणित का विज्ञान में इतना महत्व है तथा विज्ञान की इतनी शाखाओं में इसकी उपयोगिता है कि गणितज्ञ एरिक टेम्पल बेल ने इसे 'विज्ञान की साम्राज्ञी और सेविका' की संज्ञा दी है। किसी भौतिकविज्ञानी के लिए अनुमापन तथा गणित के विभिन्न तरीकों का बड़ा महत्व होता है। रसायनविज्ञानी किसी वस्तु की अम्लीयता को सूचित करने वाले पी एच (pH) मान के आकलन के लिए लघुगणक का इस्तेमाल करते हैं। कोणों और क्षेत्रफलों के अनुमापन द्वारा ही खगोलविज्ञानी सूर्य, तारों, चंद्र और ग्रहों आदि की गति की गणना करते हैं। प्राणीविज्ञान में कुछ जीव-जन्तुओं के वृद्धि-पैटर्नों के विश्लेषण के लिए विमीय विश्लेषण की मदद ली जाती है।

उच्च गति वाले संगणकों द्वारा गणनाओं को दूसरी विधियों द्वारा की गई गणनाओं की अपेक्षा एक अंश मात्र समय के अंदर ही सम्पन्न किया जा सकता है। इस तरह कम्प्यूटरों के आविष्कार ने उन सभी प्रकार की गणनाओं में क्रांति ला दी है जहां गणित उपयोगी हो सकता है। जैसे-जैसे खगोलीय तथा काल मापन संबंधी गणनाओं
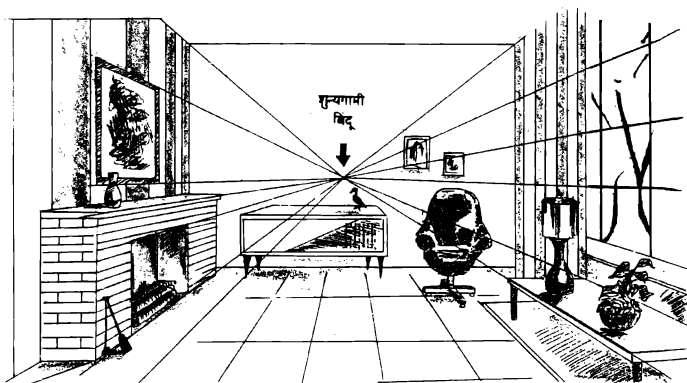
चित्र 2

की प्रामाणिकता में वृद्धि होती गई, वैसे-वैसे नौसंचालन भी आसान होता गया तथा क्रिस्टोफर कोलम्बस और उसके परवर्ती काल से मानव सुदूरगामी नए प्रदेशों की खोज में घर से निकल पड़ा। साथ ही, आगे के मार्ग का नक्शा भी वह बनाता गया। गणित का उपयोग बेहतर किस्म के समुद्री जहाज, रेल के इंजन, मोटर कारों से लेकर हवाई जहाजों के निर्माण तक में हुआ है। राडार प्रणालियों की अभिकल्पना तथा चांद और ग्रहों आदि तक राकेट यान भेजने में भी गणित से काम लिया गया है। तो संक्षेप में, यही है गणित के विषय क्षेत्र का ब्योरा।

2

संख्याएं

हर तरफ संख्याएं ही संख्याएं

संख्याएं हमारे जीवन के ढर्रे को निर्धारित करती हैं। एक आम आदमी के जीवन की निम्नांकित स्थितियों को देखिए :

- सवेरे-सवेरे अलार्म घड़ी की आवाज एक दफ्तर जाने वाले को जगाती है। "छह बज गए; अब उठना चाहिए।" इस तरह उस व्यक्ति की दिनचर्या की शुरुआत होती है।
- बस में कंडक्टर यात्री से कहता है : "चालीस पैसे और दीजिए।"
  यात्री : "क्यों, मैं तो आपको सही भाड़ा दे चुका हूं।"
  कंडक्टर : "भाड़ा अब 25 प्रतिशत बढ़ गया है।"
  यात्री : "अच्छा, यह बात है।"
- एक गृहिणी किसी महानगर में दूध के बूथ पर जा कर कहती है, "मुझे दो लीटर वाली एक थैली दीजिए।"
  "मेरे पास दो लीटर वाली थैली नहीं है।"
  "ठीक है, तब एक लीटर वाली एक थैली और आधे-आधे लीटर वाली दो थैलियां ही आप मुझे दे दीजिए।"
- एक रेस्तरां में बिल पर नजर दौड़ाते हुए एक ग्राहक कहता है : "वेटर! तुमने बिल के पैसे ठीक से नहीं जोड़े हैं। बिल 9.50 की बजाए 8.50 रु. का होना चाहिए।"
  "मुझे अफसोस है, श्रीमान!"

ये कुछ ऐसी स्थितियां हैं जो संख्याओं के रोजमर्रा के जीवन में इस्तेमाल को दर्शाती हैं। जीवन के कुछ ऐसे क्षेत्रों में भी संख्याओं की अहमियत है जो इतने आम नहीं माने जाते। किसी धावक के समय में 0.001 सैकिंड का अंतर भी उसे स्वर्ण दिला सकता है या उसे इससे वंचित कर सकता है। किसी पहिए के व्यास में एक सेंटीमीटर के हजारवें हिस्से जितना फर्क उसे किसी घड़ी के लिए बेकार कर सकता है। किसी व्यक्ति की पहचान के लिए उसका टेलीफोन नंबर, राशन कार्ड पर

पड़ा नंबर, बैंक खाते का नंबर या परीक्षा का रोल नंबर मददगार होते हैं।

कितनी पुरातन हैं ये संख्याएं? किसने उनकी खोज की? संख्याओं का उद्भव कैसे हुआ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो स्वाभाविक रूप से ही हमारे जहन में उठते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर भी उतने ही रोचक हैं, जितने कि स्वयं में ये प्रश्न। आइए चलें इन संख्याओं संबंधी कुछ तथ्यों की जानकारी हासिल करें।

संख्याओं का उद्भव

संख्याएं मानव सभ्यता जितनी ही पुरानी हैं। आक्सफोर्ड स्थित एशमोलियन अजायबघर में राजाधिकार का प्रतीक एक मिस्री शाही दंड (रायल मेस) रखा है, जिस पर 1,20,000 कैदियों, 4,00,000 बैलों और 14,22,000 बकरियों का रिकार्ड दर्ज है। इस रिकार्ड से जो 3400 ईसा पूर्व से पहले का है, पता चलता है कि प्राचीन काल में लोग बड़ी संख्याओं को लिखना जानते थे। बेशक संख्याओं की शुरुआत मिस्रवासियों से भी बहुत पहले हुई होगी।
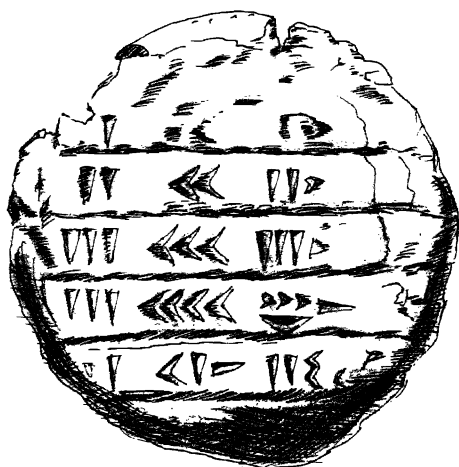
चित्र 3

आदिमानव का गिनती से इतना वास्ता नहीं पड़ता था। रहने के लिए उसके पास गुफा थी, भोजन पेड़-पौधों द्वारा या फिर हथियारों से शिकार करके उसे मिल जाता था। मगर करीब 10,000 साल पहले जब आदिमानवों ने गांवों में बस कर खेती का काम और पशुपालन आरंभ किया तो उनका जीवन पहले से कहीं अधिक जटिल हो गया। उन्हें अपने रोजमर्रा के कार्यक्रम के साथ अपने सार्वजनिक एवं

पारिवारिक जीवन में भी नियमितता लाने की जरूरत महसूस हुई। उन्हें पशुओं की गिनती करने, कृषि उपज का हिसाब रखने, भूमि की पैमाइश तथा समय की जानकारी के लिए संख्याओं की जरूरत पड़ी। दुनिया के विभिन्न भागों में जैसे कि बेबीलोन, मिस्र, भारत, चीन तथा कई और स्थानों पर विभिन्न सभ्यताओं का निवास था। इन सभी सभ्यताओं ने संभवतया एक ही समय के दौरान अपनी-अपनी संख्या-पद्धतियों का विकास किया होगा। बेबीलोन निवासियों की प्राचीन मिट्टी की प्रतिमाओं में संख्याएं खुदी मिलती हैं (चित्र 3)। तेज धार वाली पतली डंडियों से वे गीली मिट्टी पर शंकु आकार के प्रतीक चिह्नों की खुदाई करते, बाद में इन्हें ईंटों की शक्ल दे देते। एक (Y), दस (≺), सौ(Y≻)आदि के लिए विशेष प्रतीकों का इस्तेमाल किया जाता था। इन प्रतीकों की पुनरावृत्ति द्वारा ही वे किसी संख्या को प्रदर्शित करते जैसे कि 1000 को लिखने के लिए वे≺⅄≻के प्रतीक चिह्न का सहारा लेते। या फिर 100 की संख्या को दस बार लिखते थे (चित्र 4)। बेबीलोनवासी काफी बड़ी संख्याओं की गिनती जानते थे। संख्याओं की गिनती वे 1 से 60 तक करते तथा बड़ी संख्याओं की गिनती वे 60 की संख्या के माध्यम से ही करते, जैसा कि आजकल हम संख्या 10 के माध्यम से अपनी गिनती करते हैं। मिस्र के प्राचीन निवासी भी बड़ी संख्याओं की गिनती करना जानते थे तथा साल में 365 दिन होने की जानकारी उनके पास थी। वे 'हाइरोग्लाइफिक' पद्धति का इस्तेमाल करते थे जिसमें कि संख्याओं को
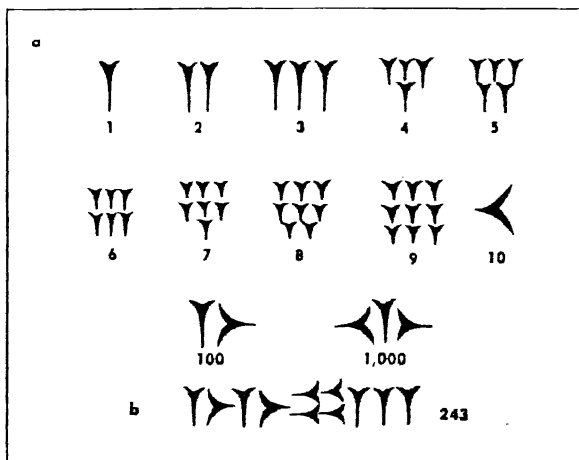
चित्र 4
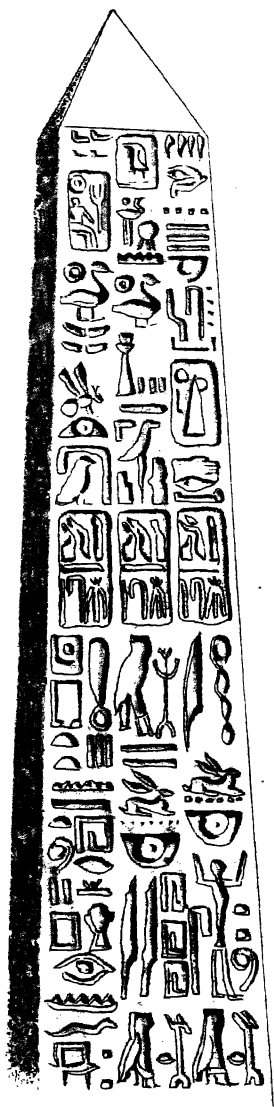
चित्र 5

'ओबेलिस्क' नामक शिलाखंडों पर लिखा जाता था (चित्र 5)। लेकिन बड़ी संख्याओं को लिखने के लिए यह पद्धति बहुत असुविधाजनक थी (चित्र 6 अ)। इसमें संख्या 527 को कैसे लिखा जा सकता था, इसका पता हमें चित्र 6 ब से चलता है।

शुरू-शुरू में गिनती के लिए वे लोग सरल-सी संख्याओं का इस्तेमाल किया करते थे। उनमें से कइयों को 20 से ऊपर की गिनती नहीं आती थी और कुछेक तो 10 या 5 तक ही गिन पाते थे। आज भी कुछ गांव निवासी 20 तक ही गिन पाने में सक्षम हैं। कुछ आदि जनजातियां तो 4 तक की गिनती ही जानती हैं। गिनती सीखने वाले छोटे बच्चे भी 10 से ऊपर की गिनती सीखने में अक्सर कठिनाई का अनुभव करते हैं।

सबसे पहले मानव ने झुंड में जानवरों की गिनती जमीन पर छोटे-छोटे कंकड़ों को रख कर या फिर हर जानवर के नाम रस्सी में गांठ लगा कर की (चित्र 7)। कंकड़ों के ढेर में पड़ा हर कंकड़ या रस्सी में लगी हर गांठ एक-एक जानवर को प्रदर्शित करती थी। बाद में चल कर मनुष्य ने गणना के लिए संभवतया अपनी दस उंगलियों का सहारा लिया। अनुमान किया जा सकता है कि दसों उंगलियों के सहारे दस की गिनती पूरी हो जाने के बाद एक छोटे-से पत्थर को पहले दस तक की गणना को सूचित करने के लिए रख दिया जाता होगा।
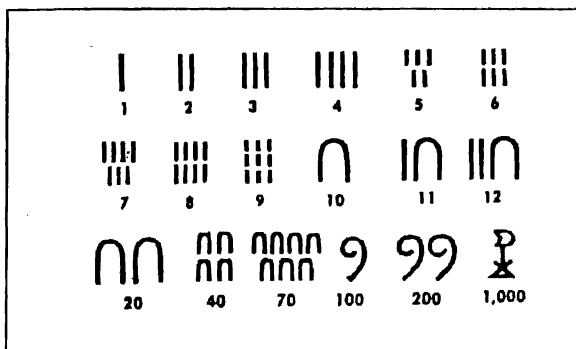
चित्र 6 अ
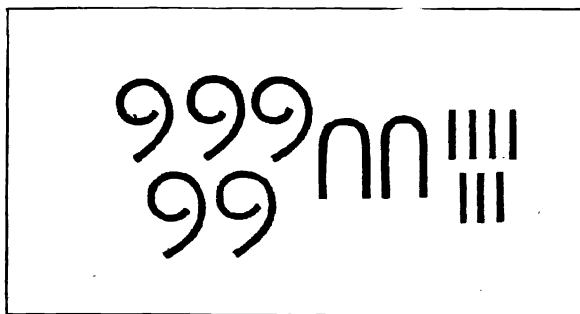
चित्र 6 ब

उंगलियों का प्रयोग दोबारा से अगले दस तक की गणना के लिए किया जाता था। फिर पहले पत्थर के साथ दूसरे पत्थर को भी रख दिया जाता होगा और इसी तरह यह क्रम चलता रहता होगा। इस तरह जब पत्थरों की ढेरी में दस उंगलियों के बराबर यानी दस पत्थर हो जाते तो वे दस दशम को व्यक्त करते थे (चित्र 8)। दस पत्थरों की ढेरी को हटा कर उसके स्थान पर तब एक बड़ा पत्थर रख दिया जाता जो 'दस दशम' या एक सैकड़े को प्रदर्शित करता होगा। इस तरह तीन बड़े पत्थर, सात छोटे पत्थर तथा आठ उंगलियों की द्योतक आठ छोटी डंडियों के माध्यम
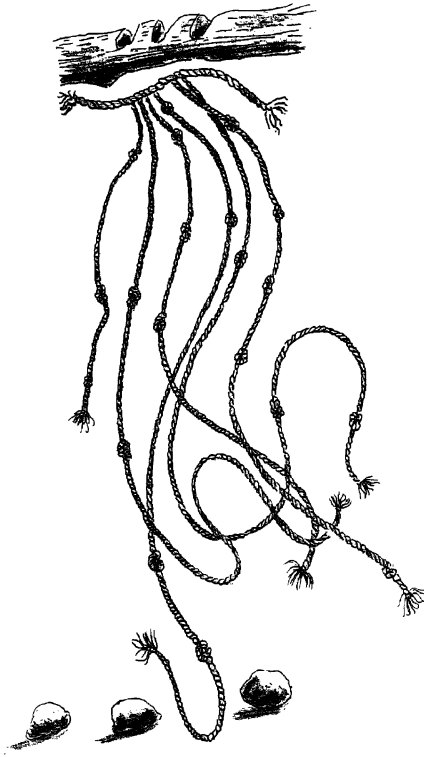
चित्र 7

से 378 की संख्या को निरूपित किया जाता होगा (चित्र 9)। ऐसा भी नहीं था कि हर आदिमानव दस या हाथ की दसों उंगलियों का सहारा गणना के लिए लेता था। कुछ तो उंगलियों को छोड़कर केवल दोनों हाथों से ही काम चला लेते होंगे, कुछ शायद पैरों की उंगलियों का भी प्रयोग करते होंगे तथा गणना के लिए और न जाने किस-किस तरीके का इस्तेमाल किया जाता होगा।

चूंकि पत्थरों, कंकड़ों और डंड़ियों का इस्तेमाल अजीब लगता था, इसलिए लिखना सीखने के तुरंत बाद ही संख्याओं को व्यक्त करने के लिए मनुष्य ने प्रतीक चिह्नों का विकास किया।
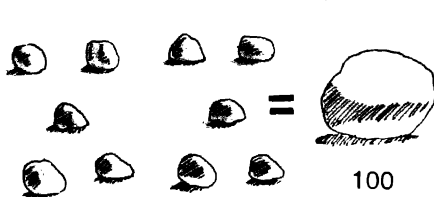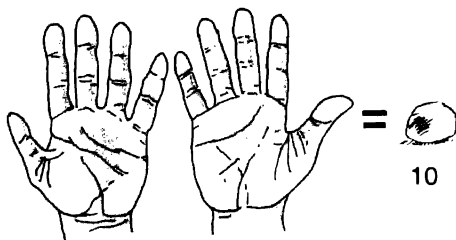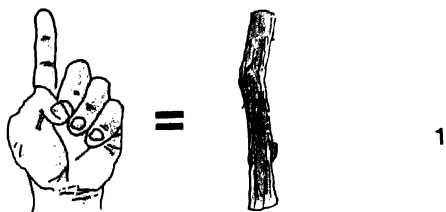
चित्र 8
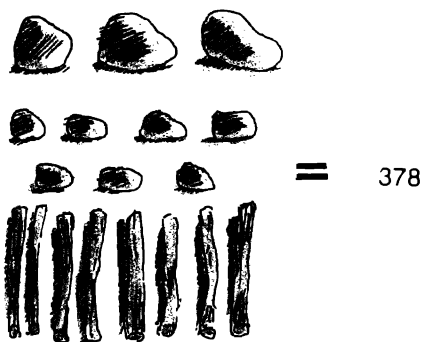
चित्र 9

संख्याओं को लिखना

भारत, चीन तथा अन्य देशों की प्राचीन सभ्यताओं ने संख्याओं को निरूपित करने के लिए अपनी-अपनी पद्धतियों का विकास कर लिया था। भारत और मिस्र के निवासी संख्याओं की गणना के लिए 10 को आधार के रूप में लेते थे, उदाहरण के तौर पर वे 1 से लेकर 10 तक की संख्याओं का प्रयोग करते तथा और बड़ी संख्याओं की गणना के लिए संख्या 10 के समूह का ही सहारा लेते थे। दक्षिण अमेरिका में बसने वाले माया सभ्यता के लोग गणना के लिए 20 की संख्या जबकि सीरिया के निवासी 2 की संख्या को आधार मानते थे।
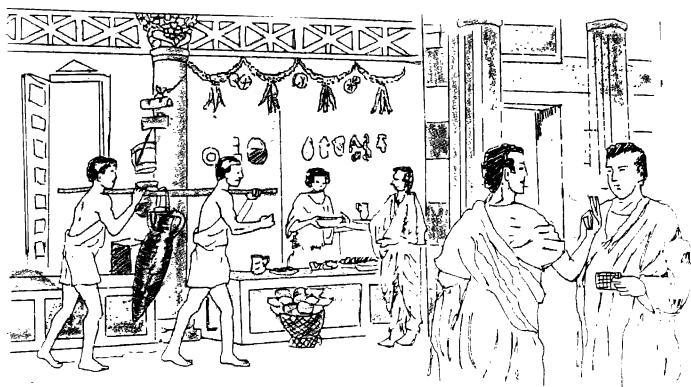
चित्र 10

यूनान और रोम के निवासी (चित्र 10) संख्याओं को व्यक्त करने के लिए विभिन्न संकेतों की जगह अपनी वर्णमाला के अक्षरों का ही इस्तेमाल करते थे। संख्याओं के विशद निरूपण के लिए यूनानी लोग अपनी वर्णमाला के सभी अक्षरों

A	B	Γ	Δ	E	F*	Z	H	Θ	I	K	Λ	M	N
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	20	30	40	50

Ξ	O	Π	Q*	P	Σ	T	Υ	Φ	X	Ψ	Ω	ϡ*
60	70	80	90	100	200	300	400	500	600	700	800	900

चित्र 11

के अलावा तीन अतिरिक्त प्रतीक चिह्नों का भी सहारा लेते थे। हर अक्षर एक निश्चित संख्या मान को सूचित करता था जैसे शुरू के नौ अक्षर संख्या 1 से 9 तक को निरूपित करते थे, उसके बाद के नौ अक्षर 10, 20, ... 90 संख्याओं को व्यक्त करते थे, और इसी तरह से क्रम पूरा होता था। शून्य को निरूपित करने के लिए उनके पास कोई चिह्न नहीं था (चित्र 11) । जानें-पहचाने रोमन अंकों I (एक), V (पांच), C (100), M (1000) आदि का इस्तेमाल आज भी संख्या-निरूपण में किया जाता है (चित्र 12) । लेकिन प्रयोग की दृष्टि से असुविधाजनक होने के कारण इन संख्याओं को लिखने या गणना करने की रोमवासियों की क्षमता सीमित ही थी।

चित्र 12

हिंदुओं ने ही संख्याओं को लिखने के लिए सबसे सुविधाजनक एवं एक पूर्ण पद्धति का विकास किया जिसे समग्र विश्व में अपनाया गया तथा जिसका आज भी प्रयोग होता है। 100 ईसा पूर्व से लेकर 200 ईसवी के दौरान हिंदुओं ने 1 से लेकर 10 तक संख्याओं को निरूपित करने वाले प्रतीकों का विकास किया जिसे बाद में अरबों ने अपनाया। आठवीं सदी में स्पेन के एक विस्तृत भू-भाग को युद्ध में जीत कर अरबों ने इस विजित प्रदेश में हिंदू-अरबी अंक पद्धति को जारी किया (चित्र 13) । धीरे-धीरे बाकी यूरोपवासियों ने भी इस पद्धति को अपनाया। पंद्रहवीं सदी तक इस अंक पद्धति के संकेतांक यानी 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0 एक जाना-पहचाना रूप ले चुके थे। शुरू में 20, 30, 40 आदि संख्याओं के लिए विभिन्न प्रतीक चिह्नों का इस्तेमाल होता था। लेकिन परवर्ती काल में दो क्रांतिकारी अवधारणाओं ने गणित का स्वरूप ही बदल दिया। पहली अवधारणा के अंतर्गत संख्याओं को समूहों जैसे कि दस, सौ (यानी दस-दस के दस समूह), 1000 (सौ-सौ के दस समूह) आदि के रूप में लिखने की तथा हर समूह को एक भिन्न स्थान प्रदान करने की शुरुआत की गई। यह जानने के लिए कि 10 या 100 या 1000 के कितने समूह किस स्थान पर मौजूद हैं, 1 से 9 तक के अंकों का सहारा लिया गया।
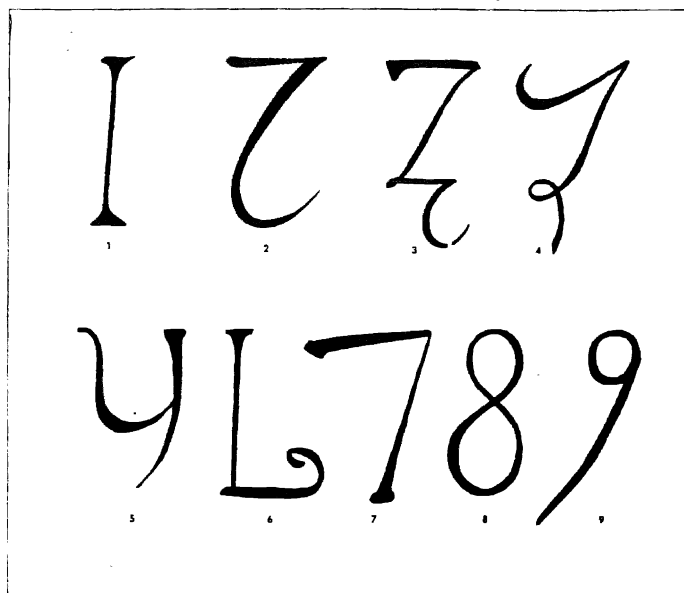
चित्र 13

इस व्यवस्था ने 20, 30 आदि संख्याओं के लिए अलग से प्रतीकों की जरूरत को खत्म कर दिया। इस अवधारणा को स्थान-मान संकेत का नाम दिया जाता है। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण अवधारणा स्थान-मान संकेत में किसी समूह के बीच के रिक्त स्थान को व्यक्त करने के लिए संख्या 0 का इस्तेमाल था। 'जीरो' के लिए शून्य, जिसका अर्थ रिक्त या खाली है का प्रयोग किया जाता था। 1 से 9 यानी एक अंक वाली संख्याओं के लिए *एकक* शब्द का प्रयोग होता, 10 संख्याओं के समूह को *दशक*, 100 के समूह को *शतक* आदि कहा जाता था। अगर किसी संख्या में दस-दस के दो समूह होते और इकाई का स्थान खाली होता तो खाली स्थान पर 0 लिख कर संख्या को 20 लिखा जाता। इसी तरह संख्या 307 का अर्थ होता 100 के तीन समूह, 10 का कोई भी समूह नहीं (रिक्त स्थान) तथा एक-एक के सात समूह यानी सात इकाइयां। इकाई वाला समूह सबसे दाहिनी तरफ होता, दहाई का उसके बाएं तरफ तथा सैकड़े का उसके भी बाएं तरफ होता था और इस तरह बाकी समूहों

के स्थान भी एक-एक कर बाएं खिसकते जाते थे। अतः किसी संख्या के 'अंकों' के स्थानों को निम्नांकित तरीके से प्रदर्शित किया जाता था :

हजार	सैकड़ा	दहाई	इकाई
1000	100	10	1

संख्या में कितने दहाई, सैकड़े, हजार आदि मौजूद हैं इसे अंकों यानी 1 से 9 तक की संख्याओं से व्यक्त किया जाता था। शून्य (0) को रिक्त स्थान का द्योतक माना जाता था। जैसे कि संख्या 85406 कुछ इस तरह से व्यक्त की जाएगी :

10,000	1,000	100	10	1
8	5	4	0	6

अतः संख्या 85,406 निम्न रूप में भी लिखी जा सकती है : $(8\times10,000) + (5\times1,000) + (4\times100) + (0\times10) + (6\times1)$। यहां पर अंक 8 का मान 80,000, अंक 5 का 5,000 आदि है।

हिंदुओं की यह अंक प्रणाली इतनी क्रांतिकारी सिद्ध हुई कि बाकी सभी प्रणालियां इसके आगे दम तोड़ गईं और इस प्रणाली को फिर विश्व भर में अपनाया गया। संख्याओं को लिखने की खामियों को हटा कर इस प्रणाली ने बड़ी से बड़ी संख्याओं को लिखना संभव बनाया। इस प्रणाली के सहारे गणनाओं को बस कागज और कलम द्वारा ही करना संभव हो गया और गिनतारा जैसी गणना करने वाली युक्तियों से छुटकारा मिल गया। आधुनिक घातांक पद्धति (इंडेक्स नोटेशन) में 10, 100 आदि के समूहों को 10 की घात के रूप में व्यक्त किया जाता है। अतः संख्या 10 पर आधारित होने के कारण इसे दशमलव पद्धति की संज्ञा दी जाती है। इसमें स्थान-मानों को यूं लिखा जाता है :

$$10^7 \quad 10^6 \quad 10^5 \quad 10^4 \quad 10^3 \quad 10^2 \quad 10^1 \quad 10^0$$

इस तरह संख्याओं को किसी भी स्थान-मान तक ले जाया जा सकता है। दर-असल हिंदुओं ने अठारह स्थानों तक संख्याओं को लिखने में सफलता पाई थी। संख्या 1,000,000,000,000,000,000 को *परार्ध* की संज्ञा दी जाती थी। आधुनिक पद्धति में इसे दस लाख के दस लाख का दस लाख मान सकते हैं।

दस से अलग आधार

दशमलव पद्धति की सबसे बड़ी खूबी उसका व्यापक स्वरूप है। स्थान-मान एवं शून्य की अवधारणाओं के सहारे किसी भी संख्या को 10 से भिन्न आधार वाली पद्धति में व्यक्त किया जा सकता है। एक ऐसी पद्धति को लें जिसका आधार 5 है। स्थान-मानों को इसमें 5 की घात के रूप में व्यक्त किया जाता है :

$$5^6 \quad 5^5 \quad 5^4 \quad 5^3 \quad 5^2 \quad 5^1 \quad 5^0$$

इस पद्धति में 1, 2, 3, 4, 0 केवल इन पांच अंकों का ही प्रयोग होता है।

इसमें 1 से 4 तक के अंकों को इकाई के स्थान पर रखा जाता है, अगले स्थान पर 5 के समूहों को तथा उससे भी अगले स्थान यानी 5^2 पर, 5 के पांच समूहों को लिखा जाता है। संख्या 4,203 को 5^3 के चार समूह, 5^2 के दो समूह, 5 के शून्य समूह (यानी समूहविहीन) तथा 3 को इकाई के स्थान पर व्यक्त किया जाएगा :

5^3	5^2	5^1	5^0
4	2	0	3

दशमलव पद्धति में इस संख्या का मान होगा : $(4\times125) + (2\times25) + (0\times5) + 3 = 553$, क्योंकि $0\times5 = 0$ होता है। अगर 2 आधार वाली पद्धति को लिया जाए तो इसमें केवल दो ही अंकों 0 और 1 का ही प्रयोग होगा। इस पद्धति के स्थान-मानों को 2 की घातों द्वारा लिखा जाएगा तथा संख्या 553 को निम्न तरह से लिखा जाएगा :

2^9	2^8	2^7	2^6	2^5	2^4	2^3	2^2	2^1	2^0
1	0	0	0	1	0	1	0	0	1

यह जुड़ कर इस तरह बनेगा : $(1\times512) + (0\times256) + (0\times128) + (0\times64) + (1\times32) + (0\times16) + (1\times8) + (0\times4) + (0\times2)$ 1। इससे पता चलता है कि दशमलव पद्धति का रूप कितना व्यापक है। आधार 2 वाली पद्धति के बारे में ज्यादा जानकारी बाद में दी जाएगी।

शून्य की खोज को गणित के इतिहास में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना माना जाता है। मजाक के रूप में यह कहा भी जाता है कि हिंदुओं ने *गणित* को 'कुछ नहीं' (यानी शून्य) दिया। गणित के इतिहास को लिखने वाले एक अमेरिकी लेखक के अनुसार, "गणित के सम्पूर्ण इतिहास में इससे बढ़कर और कोई क्रांतिकारी उपक्रम नहीं है जो हिंदुओं ने शून्य की खोज करके किया। संसार के एक महान गणितज्ञ लापलास के अनुसार, "केवल दस संकेतों से सभी संख्याओं को व्यक्त करने की अद्‌भुत विधि हमें भारत से ही प्राप्त हुई है। हर संकेत को इस तरह अपना एक स्थान-मान तथा एक अचर-मान भी मिल जाता है – यह एक ऐसी गहन और महत्वपूर्ण धारणा है जो आज हमें इतनी सरल प्रतीत होती है कि इसके असली महत्व को हम नकार देते हैं। इस उपलब्धि की महानता तब और भी बढ़ जाती है जब हम स्मरण करते हैं कि आर्किमिडीज और एपोलोनियस जैसे दो प्राचीन धुरंधर गणितज्ञ भी इस धारणा के बारे में सोच नहीं पाए थे।"

संक्रियाएं

दैनिक जीवन में गणित न केवल उपयोगी है बल्कि उसी से इसकी उत्पत्ति भी हुई है। गणित-ज्ञान की सृष्टि मानव प्रयासों का ही फल है। मूल रूप से अपनी सामाजिक

एवं व्यक्तिगत जरूरतों को नियमित करने के लिए ही मानव ने गणित का विकास किया था। आदिमानव तक के जीवन में अनेक गतिविधियों का समावेश था। उसे जानवरों के झुंडों में अपने मवेशियों की गिनती करनी पड़ती थी, गांव की जनसंख्या जाननी होती थी, तथा इसी तरह के अनेक कार्य करने पड़ते थे। अपने मकानों को बनाने, खेतों को तैयार करने तथा धार्मिक अनुष्ठानों के लिए वेदी के निर्माण में क्षेत्रफल का अनुमापन करना पड़ता था। अपनी खेती की उपज की मिकदार जानने के लिए उसे आयतन ज्ञात करने तथा अनेक वस्तुओं का भार निकालने के अलावा काल मापन भी करना पड़ता था। इन सबके लिए मनुष्य ने अनेक मापन प्रणालियों का विकास किया था। मिस्र के आदि-निवासियों द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला सूच्याकार स्तंभ (ओबेलिस्क) को छाया घड़ी की संज्ञा भी दी जाती थी जो सूर्य की छाया को निक्षेपित करती थी। उगते और डूबते सूरज की छाया के बीच की दूरी को घंटों में बांटा जाता था (चित्र 14)। एक प्रणाली के मापों को दूसरी प्रणाली के मापों में बदलने के लिए मनुष्य ने मापक्रमों (स्केल) का विकास भी कर लिया था। मिस्री धर्मवाचक धातु की छड़ का इस्तेमाल क्यूबिट (प्राचीन लंबाई के माप की इकाई जो उंगलियों समेत भुजा की लंबाई के बराबर होती थी) के रूप में करते थे।
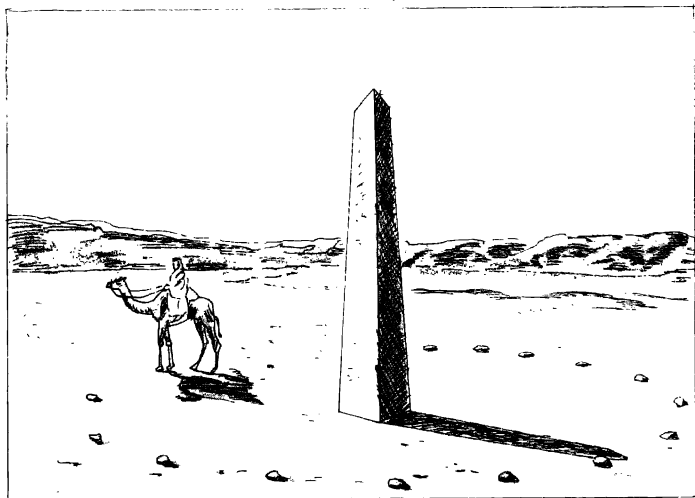
चित्र 14
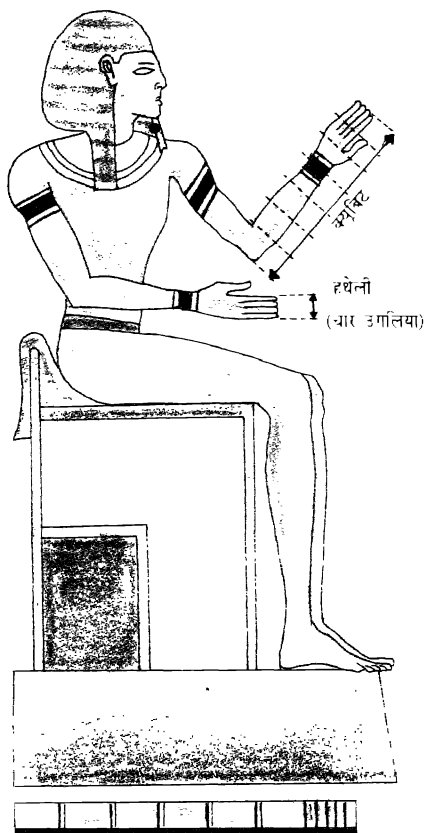
इस धातुई छड़ में हथेली (वास्तव में चार उंगलियों की चौड़ाई) डिजिट की चौड़ाई को छोटे अंशों की मदद से प्रदर्शित किया जाता था (चित्र 15)। इन सभी गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने के लिए न केवल संख्याओं की बल्कि उन संख्याओं पर की जाने वाली संक्रियाओं की भी मदद लेनी पड़ती थी।

चित्र 15

संख्याओं के उद्भव तथा उन पर की जाने वाली संक्रियाओं के मूल में एक सरल एवं आधारभूत सिद्धांत कार्य करता है। इसके लिए दो समूहों की वस्तुओं की एक-एक कर जोड़ी होती है। संदर्भ समूह के रूप में हाथ की दस उंगलियों का सहजता से इस्तेमाल किया जाता था। एक वस्तु की तुलना हाथ की एक उंगली से, दो वस्तुओं की तुलना दो उंगलियों, आदि से की जाती थी। इस तरह 1 से 10 तक की संख्याओं की धारणा जन्मी। एक समूह की वस्तुओं की दूसरे समूह की वस्तुओं के साथ एक-एक कर जोड़ी बना कर ही किसी भी समूह के छोटे-बड़े होने का पता लगाया जाता था। अगर किसी समूह में कोई वस्तु अकेली बिना किसी जोड़ी के रह जाती थी तो उस समूह में ज्यादा वस्तुएं होने का पता चलता था। दो समूहों में अगर वस्तुओं की आपस में पूरी-पूरी जोड़ियां बन जातीं तो वे बराबर की मानी जाती थीं। वस्तुओं

की एक-एक कर जोड़ियां बना कर तुलना करने से एक समता का एहसास स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है। इस तरह एक-एक कर जोड़ियां बनाने की धारणा को अब एकैकी संगति वाले सिद्धांत की संज्ञा दी जाती है और गणित का समस्त विकास इसी सिद्धांत पर आधारित है। वस्तुतः, एकैकी संगति सिद्धांत एक वस्तु की एक संख्या के साथ एक अनन्य युग्म (यूनीक पेयर) का गठन करने में हमारी मदद करता है।

किसी भी वस्तु की पहचान की यह एक निराली युक्ति है। उदाहरण के लिए पिन कोड संख्या से डाकखाने के साथ एक पहचान का रिश्ता कायम होता है। किसी भी पत्र को सही मुकाम तक पहुंचाने के लिए डाकखाने के नाम की बजाय अब पिन कोड का जिक्र करना भर ही काफी होता है। परीक्षा का रोल नंबर भी परीक्षार्थी और उसके नंबर के बीच एक पहचान सूत्र का ही कार्य करता है। परीक्षाफल की घोषणा के समय भी परीक्षार्थियों के नामों की जगह बस नंबरों की सूची ही प्रकाशित की जाती है। इसी सिद्धांत पर टेलीफोन नंबर या राशन कार्ड पर पड़े नंबर से ही व्यक्ति की पहचान हो जाती है। आधुनिक कम्प्यूटर भी संख्याओं तथा उनके द्वारा निरूपित वस्तुओं के बीच कम्प्यूटर-प्रोग्राम द्वारा स्थापित कोड के जरिए ही कार्य करते हैं। संख्याओं के विकास के शुरुआती दौर में छोटी-छोटी डंडियों और कंकड़ों को ही संदर्भ समुच्चयों के रूप में इस्तेमाल किया जाता था, जिनकी फिर गणना की जाने वाली वस्तुओं के साथ जोड़ियां बनाई जाती थीं। यहां तक कि सबसे सरल तथा अति आधारभूत योग की संक्रिया का जन्म दो समुच्चयों के बीच वस्तुओं की परस्पर जोड़ियां बनाने के कायदे से ही हुआ।

तीन सिक्कों वाले एक समुच्चय तथा दो सिक्कों वाले एक दूसरे समुच्चय की कल्पना कीजिए (चित्र 16)। ब समुच्चय अ का उप-समुच्चय या सब-सेट है क्योंकि इसमें एक सिक्का जोड़ीविहीन रह जाता है। अतः संख्या 3 संख्या 2 से बड़ी हुई। अब अगर समुच्चय ब में हम एक और सिक्का जिसे श्वेत रंग से दर्शाया गया है, मिला दें तो दोनों समुच्चयों में सिक्कों की पूरी-पूरी जोड़ियां बन जाती हैं। इस तरह दोनों संख्याएं बराबर हो जाती हैं और हमें एक गणितीय संबंध प्राप्त होता है 2 + 1 = 3। जोड़ के रूप में संख्याओं पर संक्रियाओं की यह एक शुरुआत है। अतः दो संख्याओं का जोड़ एक नई संख्या को जन्म देता है जो दोनों संख्याओं से बड़ी है। निरीक्षण द्वारा पाया गया है कि जोड़ी जाने वाली वस्तुएं चाहे कुछ भी हों, 2 + 1 के योग ने हमेशा 3 की संख्या ही योगफल के रूप में प्रदान की। अतएव जोड़ द्वारा किसी संख्या युग्म के साथ संबद्ध एक अनन्य संख्या ही प्राप्त होती है। यहां भी 2 + 1 तथा 3 के बीच एक एकैकी संगति ही देखने को मिलती है। इस तरह जोड़ की संक्रिया द्वारा संख्याओं के समुच्चय में एक-एक कर विभिन्न संख्याएं
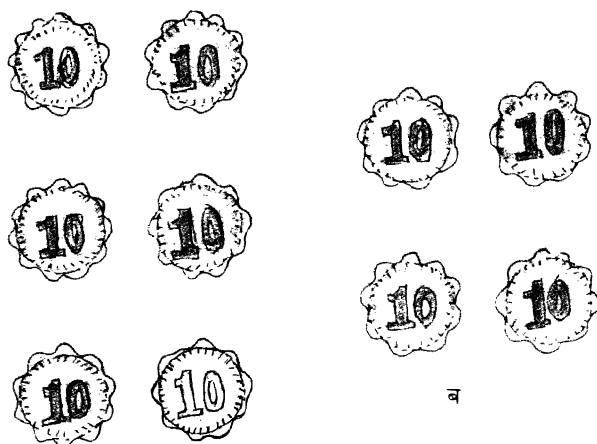
चित्र 16

1, 2, 3, 4, . . ., आदि आ जुड़ती हैं जहां कि तीन बिंदु कभी न खत्म होने वाले संख्याओं के अनुक्रम के द्योतक हैं। इस समुच्चय की किन्हीं भी दो संख्याओं को जोड़ने पर हमें उसी समुच्चय की दूसरी संख्या प्राप्त होती है।

सिक्कों के समुच्चयों अ तथा ब पर अब पुनर्विचार करें। अगर समुच्चय अ से हम एक सिक्का निकाल लें तो दोनों समुच्चयों में सिक्कों की पूरी-पूरी जोड़ियां बन जाती हैं। जैसा कि चित्र 16 ब दर्शाता है वस्तुओं के किसी भी समुच्चय से 'कुछ' निकाल लेने की क्रिया घटाने की संक्रिया 3 − 1 = 2 को व्यक्त करती है। यह जोड़ की क्रिया का एकदम उल्टा है। जोड़ एवं घटा ही मनुष्य द्वारा की जाने वाली सबसे आरंभिक संक्रियाएं थीं। धीरे-धीरे और भी जटिल संक्रियाओं जैसे कि गुणा एवं भाग का भी विकास हुआ। लेकिन ये दोनों संक्रियाएं भी जोड़ और घटा की मूलभूत संक्रियाओं पर ही आधारित हैं। दरअसल आज के इस कम्प्यूटर युग में तो जोड़ और घटा की क्रियाएं पहले से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई हैं।

समूहों के रूप में वस्तुओं की कल्पना सहज रूप से ही हमारे दिमाग में उपजती है। कई बार बहुत-सी वस्तुओं की गिनती के लिए हम उन्हें दो, चार या पांच की

ढेरियों में ही रखते हैं। तीन-तीन की दो ढेरियों का जोड़ 6, तीन ढेरियों का 9 आदि बैठता है। इसी प्रकार क्रम चलता रहता है (चित्र (17)।
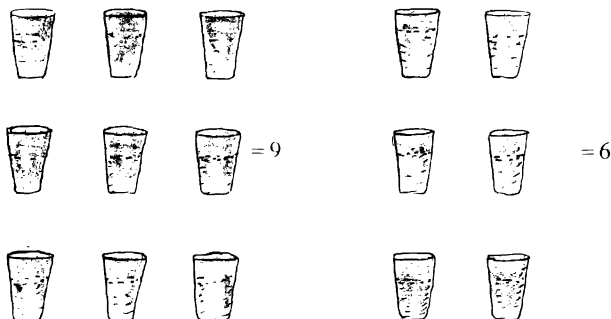
चित्र 17

इसी अवधारणा से ही गुणन क्रिया का जन्म हुआ, जबकि भाग की संक्रिया का जन्म घटाने की निरंतर क्रिया से ही हुआ। जोड़ द्वारा दो संख्याओं का गुणनफल कैसे निकाला जाता है, यह जानना अपने-आप में दिलचस्प होगा। प्राचीन मिस्रवासी जोड़ द्वारा संख्या 12 को 12 से गुणा करने के लिए नीचे दर्शाई गई विधि का इस्तेमाल करते थे :

1	12
2	24
4	48
8	96

ऊपर की तालिका की हर संख्या को उसकी पूर्ववर्ती संख्या को दुगना करके निकाला गया है। अब चूंकि $4 \times 12 = 48$ और $8 \times 12 = 96$, $48 + 96$ से गुणनफल 12×12 निकल आता है अर्थात $12 \times 12 = 144$। यह एक रोचक जानकारी है कि इस तथ्य का उन (मिस्रवासियों) पर रहस्योद्घाटन हो गया था कि $4 \times 12 + 8 \times 12 = (4 + 8) \times 12$। यह गुणनफल का वितरण नियम कहलाता है।

क्रमागत घटाने की क्रिया को ही भाग कहते हैं। भाग के इस उदाहरण $12 \div 3$ को लें। संख्या 3 को 12 से चार बार घटाने से यह क्रिया सम्पन्न की जा सकती

है। अतः $12 \div 3 = 4$। अब 8 द्वारा संख्या 19 के भाग का दूसरा उदाहरण लेते हैं। संख्या 8 को 19 से हम केवल दो बार ही घटा सकते हैं। इस तरह 3 की संख्या 8 से भाग होने से बची रहती है। अतः संख्या $\frac{19}{8}$ को हम इस तरह से लिख सकते हैं :

$$\frac{19}{8} = 2 + \frac{3}{8} \text{ अर्थात् } 2 + \frac{2}{8} + \frac{1}{8} \text{ अर्थात् } \frac{19}{8} = 2 + \frac{1}{4} + \frac{1}{8}$$

किसी साबुत चीज या आकार को टुकड़ों में विभक्त करने की क्रिया को ही भाग कह सकते हैं। मिसाल के तौर पर एक चौकोर कागज को चार बराबर भागों में काटा जा सकता है। इसे संख्या 1 को 4 से भाग देना माना जा सकता है। इस तरह प्राप्त हर हिस्से को $\frac{1}{4}$ से व्यक्त कर सकते हैं। इसने भिन्नों की अवधारणा को जन्म दिया। इस तरह अब हम दो तरह की संख्याओं के बारे में सोच सकते हैं, प्राकृतिक तथा भिन्न संख्याएं। शून्य की खोज के बाद इसे अन्य संख्याओं में शामिल कर लिया गया। शून्य समेत प्राकृतिक और भिन्न संख्याओं तथा जोड़, घटा, गुणन, भाग की संक्रियाएं हमारे रोजमर्रा के जीवन की अधिकतर गतिविधियों को अंजाम देने के लिए काफी हैं।

यह आसानी से समझा जा सकता है कि जब संख्या 3 को संख्या 4 में जोड़ा जाता है तो योगफल के रूप में 7 की संख्या हमें प्राप्त होती है। अब मूल संख्या 4 को प्राप्त करने के लिए संख्या 3 को हमें 7 में से घटाना होगा। इस तरह जोड़ की क्रिया द्वारा जो परिणाम आता है उसे घटाने की क्रिया पूर्ववत कर देती है। अतः घटा जोड़ की उल्टी क्रिया कहलाती है। उसी तरह जोड़ घटा की विपरीत क्रिया तथा गुणन एवं भाग भी एक दूसरे की प्रतिलोम क्रियाएं मानी जाती हैं।

जिस तरह किसी संख्या के क्रमागत जोड़ का नतीजा गुणन होता है, उसी संख्या के क्रमागत गुणन द्वारा हमें वर्ग, घन या उस संख्या के और भी बड़े घात प्राप्त होते हैं। किसी संख्या का वर्ग निकालना क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिए बहुत जरूरी होता है। उसी तरह किसी संख्या के घन की जानकारी समांग भुजाओं वाली किसी आयताकार ठोस का आयतन निकालने के लिए बहुत जरूरी होती है। वर्गमूल तथा घनमूल निकालने की प्रतिलोम क्रियाओं का भी दैनिक जीवन में बड़ा महत्व है।

प्रश्न उठ सकता है कि महज कुछ गणितीय संक्रियाओं द्वारा ही मानव गतिविधियों संबंधी विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं का हल कैसे निकल आता है? एक उदाहरण द्वारा इसका विश्लेषण करते हैं। नीचे दी गई समस्याओं पर गौर करें :

- एक पुस्तकविक्रेता ने 4 रु. प्रति पुस्तक के हिसाब से किसी पुस्तक की 100 प्रतियां खरीदीं। उन पुस्तकों का कुल मूल्य कितना है?
- चार कमरों वाले एक मकान, जिसके हर कमरे का क्षेत्रफल 100 वर्ग मीटर है, का कुल क्षेत्रफल कितना होगा?

- चार मीटर लंबाई में कितने सेंटीमीटर होंगे ?
- प्रति छात्र 4 रु. के हिसाब से 100 छात्रों से कुल कितना विद्यालय शुल्क प्राप्त होगा ?

गणना द्वारा देखा जा सकेगा कि हर स्थिति में उत्तर 100 × 4 ही आता है। यह इस बात का द्योतक है कि उक्त सभी स्थितियों में एक आम समानता मौजूद है जिसे कि गुणन क्रिया 100 × 4 द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। अत: विभिन्न गणितीय संक्रियाएं दिनोंदिन घटने वाली विभिन्न स्थितियों के निरूपक, या आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में प्रतिरूप (माडल) कहे जा सकते हैं। हमारे क्रियाकलापों में निहित क्रम (पैटर्न) को संख्याएं अपनी संक्रियाओं समेत हमारे सामने उद्घाटित करती हैं। संख्याएं वास्तविक वस्तुओं से स्वतंत्र अपना अस्तित्व रखती हैं। लेकिन असल भौतिक सत्ताओं (एनटिटी) के साछ जुड़कर ही उन्हें सार्थकता मिलती है जिससे कि उन सत्ताओं के बारे में जानकारी देने में उनमें सक्षमता उत्पन्न होती है। मिसाल के तौर पर संख्या 50 द्वारा विभिन्न स्थितियां हमारे जहन में आती हैं, जैसे कि रमेश ने गणित में 100 में से 50 अंक प्राप्त किए या फिर जयपुर का अधिकतम तापमान 50° सेल्सियस है।

चित्र 18

संख्या पद्धति का विकास

500 ईसवी तक भारत अंकगणित, बीजगणित तथा त्रिकोणमिति के विकास का मुख्य केंद्र बन चुका था (चित्र 18)। संख्या पद्धति का विकास हो चुका था तथा पूर्णांक एवं भिन्न संख्याओं पर की जाने वाली संक्रियाओं के नियम स्थापित हो चुके थे। शून्य समेत 1 से 9 तक के अंक, संक्रियाओं के गणितीय चिह्न तथा गणित की भाषा की विविध शब्दावली आदि पूरी तरह से परिभाषित किए जा चुके थे। यद्यपि गणित के नियमों के रूप में ही इन नियमों को व्यक्त किया गया था तथा इनका व्यापकीकरण नहीं हुआ था, तथापि हिंदू गणितज्ञों को इनके बारे में ज्ञान था। इसी समयावधि के दौरान दो और तरह की संख्याओं मसलन ऋणात्मक तथा अपरिमेय संख्याओं को लेकर भी उनकी सोच जारी थी। उधार से जुड़े हिसाब-किताब को निपटाने के लिए ही ऋण संख्याओं की उत्पत्ति हुई। कर्जे को ऋण संख्या द्वारा व्यक्त किया गया। लेकिन फिर भी ऋण संख्याओं का इतना खुलकर इस्तेमाल नहीं हुआ जितना कि आजकल हो रहा है। बर्फ का तापमान जिसे शून्य सेल्सियस मान लिया जाता है, को दर्शाने के लिए ऋण संख्याओं का प्रयोग किया जाता है। औसत वर्षा से कम बारिश होने पर उसे ऋण संख्या से व्यक्त किया जाता है। गोल्फ के खिलाड़ी को ऋण पाइंट दिए जाते हैं जब वह निर्धारित शाटों से कम शाटों में अपनी बारी की समाप्ति कर लेता है।

ऐतिहासिक रूप से प्राचीन काल के गणितज्ञों को ऋण संख्याओं से भी पहले $\sqrt{2}$ या $\sqrt{3}$ जैसी अपरिमेय संख्याओं के विषय में ज्ञान था। इन अपरिमेय संख्याओं का प्रयोग किसी समकोण त्रिभुज की भुजाओं को ज्ञात करने, किसी वर्ग के विकर्ण पर दिए गए क्षेत्रफल वाले वर्ग की रचना करने या फिर किसी वृत्त के बराबर क्षेत्रफल के वर्ग की रचना करने के परिकर्मों के दौरान होता था। उदाहरण के लिए किसी दिए गए वर्ग के दुगने क्षेत्रफल वाले वर्ग की रचना करने के लिए इस वर्ग की भुजा को दिए गए वर्ग के विकर्ण के बराबर लिया जाता है (चित्र 19)। अब चूंकि विकर्ण की लंबाई भुजा की लंबाई की $\sqrt{2}$ गुना है, विकर्ण पर बने वर्ग का क्षेत्रफल दिए गए वर्ग के क्षेत्रफल का दुगना होगा।
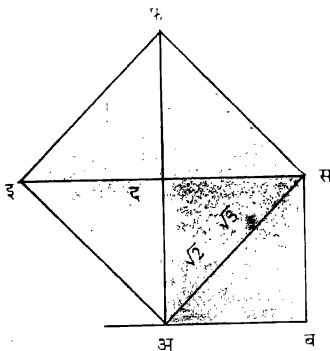
चित्र 19

उसी तरह एक ऐसे वर्ग की रचना करने के लिए जिसका क्षेत्रफल दिए गए वर्ग के क्षेत्रफल का तिगुना हो, एक आयत की रचना करनी होगी जिसकी लंबाई वर्ग के विकर्ण तथा चौड़ाई वर्ग की भुजा के बराबर हो (चित्र 20)। उस अवस्था में आयत
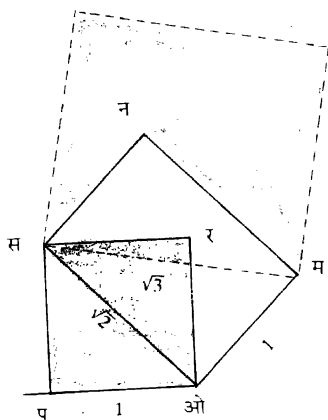
चित्र 20

के विकर्ण की लंबाई दिए गए वर्ग की भुजा की $\sqrt{3}$ गुना होगी। ऐसे आयत के विकर्ण पर बने वर्ग का क्षेत्रफल दिए गए वर्ग के क्षेत्रफल का तीन गुणा होगा। भारत, मिस्र, चीन तथा अन्य देशों के प्राचीन गणितज्ञों को तथाकथित पाइथागोरस प्रमेय की जानकारी यूनानी ज्यामिति के उद्‌भव से भी कहीं पहले थी। इस तथ्य की जानकारी भी उन्हें थी कि $\sqrt{2}$ का विशुद्ध मान ज्ञात नहीं किया जा सकता है। प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कराचार्य द्वितीय (1150 ईसवी) ने अपनी चर्चित पुस्तक *लीलावती* में $\sqrt{2}$ जैसी अपरिमेय संख्याओं के सन्निकट मान निकालने की विधि प्रस्तुत की थी।

संख्या पद्धति, जिसका कि आजकल हम इस्तेमाल करते हैं, के सम्पूर्ण विकास में करीब 5000 वर्ष लग गए। आधुनिक पद्धति में संख्याओं का विभिन्न समुच्चयों में वर्गीकरण किया जाता है। संख्याओं का प्रथम समुच्चय उन संख्याओं का समुच्चय है जिन्हें प्राकृतिक संख्याएं कहा जाता है और इस समुच्चय को हम अक्षर N से सूचित करते हैं, $N = \{1, 2, 3, 4, \ldots\}$। तीन बिंदु इस बात के द्योतक हैं

कि प्राकृतिक संख्याओं का समुच्चय अंतहीन है।

प्राकृतिक संख्याओं में शून्य को शामिल करना ही इस विकास यात्रा की अगली सीढ़ी है। इस तरह से प्राप्त नए समुच्चय को पूर्ण संख्याओं का समुच्चय कहते हैं। ऋण संख्याओं, जिन्हें कभी अप्राकृतिक कहकर नकार दिया गया था, का भी अब संख्या पद्धति में समुचित स्थान है। शून्य समेत सभी प्राकृतिक संख्याओं तथा ऋण पूर्णांकों के समुच्चय को पूर्णांकों का समुच्चय कहते हैं और इसे I से व्यक्त करते हैं, $I = - \{ \ldots, -4, -3, -2, -1, 0, 1, 2, 3, 4, \ldots \}$। बिंदु इस बात के द्योतक हैं कि धन एवं ऋण पूर्णांकों दोनों की संख्याएं ही अनंत हैं।

धन एवं ऋण भिन्नों जैसे कि $\frac{4}{5}$ और $-\frac{8}{11}$ को शामिल करके पूर्णांकों के समुच्चय को और भी विस्तृत रूप दिया जा सकता है। इस समुच्चय की किसी भी संख्या को दो पूर्णांकों के अनुपात $\frac{\text{अ}}{\text{ब}}$ की तरह से व्यक्त किया जा सकता है, जैसे कि $\frac{2}{3}$, $-\frac{3}{5}$, इत्यादि। पूर्णांकों को भी इसी तरह से व्यक्त किया जा सकता है, यथा $3 = \frac{6}{2}$, $7 = \frac{21}{3}$ आदि। ऐसे समुच्चय को *परिमेय* संख्याओं का समुच्चय कहते हैं और इसे Q से निरूपित करते हैं, $Q = \{ \ldots, -2, -\frac{3}{2}, -1, 0, \frac{1}{2}, 1, \frac{3}{2}, 2, \ldots \}$।

संख्या-लेखन के नए तरीके

अब हमें कतिपय संख्याओं को व्यक्त करने की दो नवीनतम प्रणालियों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। इनमें से प्रथम प्रणाली भिन्न संख्याओं को लेकर है। ऐसी संख्याओं को व्यक्त करने के नए तरीके को दशमलव संकेत प्रणाली कहते हैं। यह स्थान-मान प्रणाली का ही भिन्नों के लिए सरल विस्तारित रूप है। निम्नलिखित स्थान-मानों पर गौर करें :

$$\ldots 10{,}000 \;\; 1{,}000 \;\; 100 \;\; 10 \;\; 1 \;\; \frac{1}{10} \;\; \frac{1}{100} \;\; \frac{1}{1000} \;\; \frac{1}{10000}$$

ऊपर संख्या 1 के दाहिनी तरफ के स्थान-मान $\frac{1}{10}$, $\frac{1}{100}$ आदि हैं ($\frac{1}{10}$, $\frac{1}{100}$ को 10^{-1} और 100^{-1} के रूप में भी लिखा जा सकता है)। जिस तरह से पूर्णांक संख्याओं के अंकों का अनेक स्थान-मानों के साथ गुणनफल लेकर उन्हें फिर जोड़ा जाता है, ठीक उसी तरह दशमलव भिन्न के इकाई के एंक के दाहिनी तरफ आने वाले अंकों को उनके संबद्ध स्थानों के मानों के साथ गुणा करके तथा उन्हें जोड़कर ही भिन्न को व्यक्त करने वाला भाग आता है। इकाई के अंक के दाहिनी

तरफ एक बिंदु, जिसे कि दशमलव बिंदु कहते हैं, ही संख्या के भिन्न वाले हिस्से को सूचित करता है। इस प्रकार दशमलव भिन्न 234.567 को इस तरह से लिखा जा सकता है :

10^2	10^1	10^0	.	10^{-1}	10^{-2}	10^{-3}
2	3	4	.	5	6	7

अर्थात् $2\times100+3\times10+4\times1+5\times\frac{1}{10} + 6\times\frac{1}{100}+7\times\frac{1}{1000}$ भिन्नों को व्यक्त करने के आम संकेत में इसे यूं लिखा जाएगा :

$$234\ \frac{567}{1000}$$

संख्याओं को दशमलव प्रणाली में लिखने में बड़ी सुविधा रहती है। जोड़ या घटा के लिए हमें संख्याओं को उनके क्रमिक स्थानों के अनुसार एक के नीचे एक लिखना होता है तथा फिर उन्हें पूर्णांक संख्याओं की तरह से ही जोड़ना या घटाना होता है। गुणन क्रिया को दो पूर्णांक संख्याओं को गुणा करने की विधि से ही किया जाता है और फिर दशमलव बिंदु को उसके सही स्थान पर, जो दोनों संख्याओं के दशमलव स्थानों को जोड़ कर निकलता है, लगाया जाता है। भाग की क्रिया को भी दो पूर्णांक संख्याओं की तरह ही किया जाता है और दशमलव बिंदु को दोनों संख्याओं के दशमलव स्थानों को घटा कर निकाले गए स्थान पर लगाया जाता है।

किसी भिन्न को सांत (टर्मिनेटिंग) या आवर्त (रिकरिंग) दशमलव में परिवर्तित किया जा सकता है। सभी में 2 या 5 की घात वाले भिन्न टर्मिनेटिंग होते हैं, जैसे कि $\frac{1}{4} = 0.25$, $\frac{1}{2} = 0.5$। भिन्न संख्याएं जैसे कि $\frac{2}{3}$, $\frac{2}{9}$ आदि रिकरिंग होती हैं, उदाहरण के लिए $\frac{2}{3} = 0.666\ldots$, $\frac{2}{9} = 0.222\ldots$। संख्याएं जैसे कि $\sqrt{3}$, $\sqrt{2}$ आदि को भी दशमलव भिन्न के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। लेकिन ये दशमलव आवर्त और सांत भिन्नों की श्रेणी में नहीं आते हैं। दशमलव भिन्न को अधिक से अधिक स्थान तक व्यक्त करने पर ऐसी संख्या के शुद्ध से शुद्धतर मान हमें प्राप्त होते हैं।

संख्याओं को लिखने की दूसरी वह प्रणाली है जिसे संसार भर के वैज्ञानिकों ने विभिन्न राशियों जैसे कि लंबाई, समय, बल आदि को निरूपित करने के लिए एक मानक विधि के रूप में स्वीकारा है। इस प्रणाली में दशमलव भिन्न के केवल उतने स्थानों तक ही संख्या को लिखा जाता है जो कि मापी जाने वाली राशि के मान को व्यक्त करने के लिए सार्थक हों। उदाहारणार्थ अगर लंबाई का माप-जोख एक किलोमीटर के दसवें हिस्से से किया जाए तो किसी खंड की लंबाई को हम 27.15 सें.मी. की तरह लिख सकते हैं। इसे यूं भी लिखा जा सकता है 2.715×10। अतः जब कोई संख्या दशमलव रूप में होती है तब उस संख्या का पूर्णांक वाला हिस्सा केवल इकाई वाला स्थान ही होता है। शेष भिन्न के रूप में होता है

और पूरी संख्या को 10 के सम्मत घात से गुणा करके लिखा जाता है। जैसे कि पृथ्वी का अर्धव्यास 6700 कि. मी. है। अंतर्राष्ट्रीय मानक (एस आई) इकाई में इसे हम यूं लिखेंगे 6.7×10^6 मी.। उसी तरह ब्रोमीन के एक परमाणु का अर्धव्यास 1.14 आर्मस्ट्रांग इकाई (A^0) है। अब चूंकि 1 आर्मस्टांग इकाई = 10^{-10} मी., इसलिए यह 1.14×10^{-10} मी. के बराबर होगा। संख्याओं को लिखने की यह विधि दो राशियों की तुलना करने के लिए बहुत ही सुविधाजनक है। उक्त उदाहरण में यह आसानी से देखा जा सकता है कि पृथ्वी का अर्धव्यास किसी परमाणु के अर्द्धव्यास की तुलना में 10^{16} गुणा अधिक है। यह संख्या इतनी विशाल है कि 6.7 और 1.14 का अनुपात गणनाओं के लिए महत्व नहीं रखता है और उसे आसानी से नकारा जा सकता है। इस तरह की तुलना को परिमाण कोटि (आर्डर आफ मैग्नीट्यूड) कहते हैं तथा विज्ञान में इसका बड़ा महत्व है।

कुछ विचित्र संख्याएं

गणित में कुछ ऐसी संख्याएं होती हैं जिन्हें आधुनिक गणित का मूलाधार माना जाता है, लेकिन किसी को भी यह सुनिश्चित रूप में नहीं मालूम कि उनका वास्तविक स्वरूप क्या है! ऐसी संख्याओं में सर्वाधिक परिचित संख्या है यूनानी भाषा का अक्षर π (पाई)। आम तौर पर इसके मान को हम $\frac{22}{7}$ लेते हैं। लेकिन यह पाई का वास्तविक मान नहीं है। दरअसल किसी को भी इसके विशुद्ध मान का पता नहीं है। इतना भर पता है कि इसका मान 3 और 4 के बीच होता है जो एक बहुत ही स्थूल प्राक्कलन है। थोड़े और बेहतर प्राक्कलन के तहत इस मान को 3.1 और 3.2 के बीच का माना जा सकता है। आकलित मान की शुद्धता बढ़ती चली जाती है जैसे-जैसे हम अधिकाधिक दशमलव स्थानों को लेते जाते हैं। कम्प्यूटरों को पाई के आधुनिकतम मान को दस लाख से भी अधिक दशमलव स्थानों तक अभिकलित करने में सफलता मिली है।

संख्या π किसी वृत्त की परिधि और उसके व्यास के बीच के अनुपात को अभिलक्षित करती है। इतिहास के पूरे दौर में लोगों ने π के लिए अनेक सन्निकटनों का सहारा लिया है। प्राचीन हिब्रूवासियों, जिन्होंने सोलोमान के मंदिर का निर्माण किया था, उनके लिए 3 एक अच्छी संख्या ही थी क्योंकि राजाओं की प्रथम पुस्तक *बाइबिल* में मंदिर के बाहर के जवाहरात से सुसज्जित तालाब के वर्णन में यह कहा गया है, "उसने एक गलित सागर (मोल्टन सी) का निर्माण भी किया जिसका किनारे से किनारे तक का माप 10 क्यूबिट था . . . तथा 30 क्यूबिट माप की एक रेखा भी इसे चारों तरफ से घेरे थी"। बेबीलोनवासियों ने π के मान को $3\frac{1}{8}$, जबकि मिस्रवासियों ने $3\frac{12}{81}$ लिया। प्राचीन हिंदुओं ने 3.1416 के मान का प्रयोग एक वर्गाकार आकृति को खींचने के लिए किया जिसका क्षेत्रफल एक वृत्त के क्षेत्रफल

के बराबर था। चीनियों ने π के मान को 3.16 लिया था हालांकि शु चुंग ची ने 3.1415926 तथा 3.1415927 के बीच दशमलव के सात स्थानों तक शुद्ध मान को गणना द्वारा ज्ञात किया था। हालांकि प्राचीन काल में एक अनुपात के रूप में ही संख्या π का प्रयोग किया जाता था, तथापि एक विशिष्ट संख्या का स्थान इसे नहीं मिला, एवं इसके मानों को परोक्ष रूप से ही ज्ञात किया जाता था। सबसे पहले आर्किमिडीज ने ही संख्या पाई (π) को एक विशिष्ट दर्जा देकर इसके मान को किसी वृत्त की परिधि और उसके व्यास के अनुपात को लेकर निकाला था। यह सोचकर कि इसका मान $3\frac{10}{71}$ और $3\frac{1}{7}$ के बीच का होना चाहिए, उसने इसके सन्निकट मान को $3\frac{1}{7}$ यानी $\frac{22}{7}$ लिया। मगर इसे व्यक्त करने के लिए उसने किसी अक्षर संकेत आदि का सहारा नहीं लिया। विलियम जोंस ने ही 1706 में सर्वप्रथम इस अनुपात को दर्शाने के लिए अक्षर संकेत का प्रयोग किया। पाई का एक रोचक मान, पाई टेलीविजन : $\frac{1964}{625}$ के लिए काम करने वाले एक इंजीनियर के हाथ 1964 में संयोगवश ही आ लगा था। वर्ष 1949 से ही शौकिया तौर पर गणितज्ञों ने दशमलव के अधिकाधिक स्थानों तक पाई के मान की गणना के लिए कम्प्यूटरों पर अपने प्रोग्राम चलाए और 1984 में जापान के एक कम्प्यूटर ने 20 लाख दशमलव स्थानों तक इसके मान को निकाला। यह स्पष्ट है कि संख्याओं का कई व्यावहारिक कारणों से महत्व है पर उनकी अपनी एक आकर्षण शक्ति भी है एवं गणित की वह शाखा जिसे संख्या सिद्धांत या उच्च गणित की संज्ञा दी जाती है, संख्याओं एवं उनके गुणधर्मों से ही नाता रखता है।

वृत्तीय (या त्रिकोणमितीय) फलनों का आधार मानी जाती है π की संख्या। कोणों को मापी जाने वाली इकाई को रेडियन कहते हैं। 2 π रेडियन 360 अंश के बराबर होता है। अतः समस्त त्रिकोणमितीय फलनों को π के रूप में ही व्यक्त किया जाता है। किसी वृत्त के व्यास की गणना के लिए इसकी जरूरत पड़ती है और तभी आधुनिक प्रौद्योगिकी का इसे आधार माना जाता है। विद्युत अभियांत्रिकी, हर तरह के तरंग संचरण, खगोलिकी से जुड़ी गणनाएं आदि सभी त्रिकोणमितीय फलनों पर ही आधारित हैं। अतः आधुनिक विज्ञान में π एक अहम् संख्या है।

पाई जैसी ही एक और अजीबोगरीब संख्या है e। यह संख्या भी π की तरह ही आधुनिक गणित का आधार है। विभिन्न फलन जैसे कि त्रिकोणमितीय, अतिपरवलयिक फलन, चरघातांकीय फलन आदि e पर ही आधारित हैं।

संख्या e को निम्नलिखित अंततः श्रेणी के योग से निकाला जाता है।

$$1+\frac{1}{1^1}+\frac{1}{2^1}+\frac{1}{3^1}+\frac{1}{4^1}+ \ . \ . \ .$$

यह एक अंतहीन श्रेणी है। लेकिन इसका योग हमेशा 3 से कम रहता है।

π और e दोनों ही अपरिमेय संख्याएं हैं :

एक अन्य विचित्र संख्या है ι। इसे *काल्पनिक* संख्या की संज्ञा दी जाती है क्योंकि इसका असल में कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि ऋण संख्या -1 का वर्गमूल $\sqrt{-1}$ लेने पर यह प्राप्त होती है। सभी संख्याओं का एक सार्विक गुण होता है कि धन या ऋण किसी भी संख्या का वर्ग हमेशा धनात्मक होता है। अतः वास्तविक संख्या निकाय (रियल नम्बर सिस्टम) में ऐसी किसी संख्या को ढूंढ़ पाना जिसका वर्ग एक ऋण संख्या हो, असंभव है। मगर संख्याओं के वर्गमूल निकालने की क्रिया में ऐसी संख्याओं से वास्ता प्राचीन काल से ही गणितज्ञों को पड़ता रहता था। ऐसी संख्याओं को 'काल्पनिक' संख्या का नाम दस्कातिस द्वारा दिया गया। ऐसी किसी भी संख्या को जो अ+ब $\sqrt{-1}$ यानी अ+ब i स्वरूप की हो, *सम्मिश्र* संख्या कहते हैं। आधुनिक गणित में सम्मिश्र संख्याओं का व्यापक रूप से इस्तेमाल होता है तथा गणित और विज्ञान में प्रयुक्त होने वाले कई फलनों का ये आधार सिद्ध होते हैं।

संख्याओं की गणना

सभ्यता की विकास यात्रा के साथ ही जुड़ी है संख्याओं की गणना के उन्नयन की दास्तान। उदाहरण के लिए लघुगुणकीय तथा त्रिकोणमितीय सारणियों की खोज के
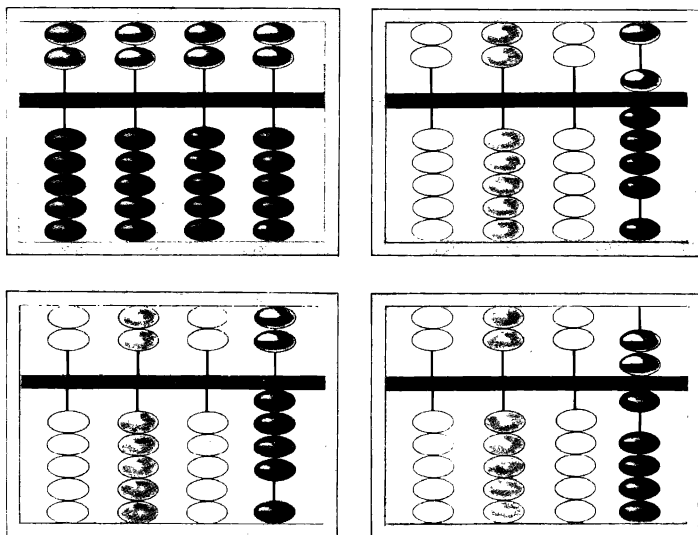
चित्र 21

बाद ही नौवाहन ने प्रगति की दिशा ली और प्रौद्योगिकी का उन्नयन स्लाइड रूल (परिकलन पट्टिका) के आने के बाद ही हुआ और आधुनिक काल को तो कम्प्यूटरों का युग ही कहा जाता है।

गिनतारा (चित्र 21) गणनाओं के लिए प्रयुक्त होने वाली स्थाई किस्म की पहली युक्ति थी। इसमें एक फ्रेम के साथ जुड़ी ऊर्ध्वाधर छड़ें होती थीं। एक क्षैतिज छड़ फ्रेम को दो हिस्सों में विभक्त करती थी। ऊपरी हिस्से में हर छड़ के साथ दो तथा निचले हिस्से में पांच मनके लगे होते थे। ऊपर वाले मनके पांच को जबकि निचले मनके इकाइयों को सूचित करते थे। इसका इस्तेमाल बड़ी संख्याओं को जोड़ने और घटाने के लिए किया जाता था।

हालांकि गिनतारा के उद्‌भव के बारे में कोई जानकारी नहीं है, मगर चीन में पिछले 3000 सालों से यह लगातार प्रयोग में लाई जा रही थी, बल्कि चीन और जापान में तो यह आज भी बहुत लोकप्रिय है।

गुणनक्रिया

गुणा कुछ अलग नहीं सिर्फ एक ही संख्या को बार-बार जोड़ने की क्रिया है। जैसे अंक 2 से हमें 2 के गुणांकों वाली श्रेणी प्राप्त होती है :

$$2, 4, 6, 8, 10, 12, 14, 16, 18, 20$$

ऊपर 2×10 तक के ही गुणांक आए हैं हालांकि इससे बड़े गुणांक भी शामिल किए जा सकते हैं। लेकिन ऐसा करना जरूरी नहीं है क्योंकि अगर 2×16 को निकालना हो तो 10 तक की सारणी से हम इसे निकाल सकते हैं, जैसे $2 \times 16 = 16 \times 2 = (10 + 6) \times 2 = 20 + 12 = 32$। आगे दी गई सारणी आम तौर पर जरूरत पड़ने वाली सभी गुणा और भाग की क्रियाओं को सम्पन्न कर पाने में सक्षम हैं (चित्र 22)।

काफी सीमा तक भारत में गुणन सारणियों का विकास हुआ। पहले दस गुणांकों के लिए 30 तक के पूर्णांकों की सारणियों तथा प्रथम 100 गुणांकों के लिए भिन्नों की सारणियों को विकसित कर 2000 वर्षों से भी अधिक समय अंतराल के लिए उनका व्यापक तौर पर इस्तेमाल किया गया।

गुणन सारणियों का इस्तेमाल भाग के लिए भी किया जाता है। उदाहरणार्थ अगर $3 \times 4 = 12$ तो $12 \div 4 = 3$। संख्याओं के मूल और घातांकों से जुड़ी कुछ जटिल गणनाओं को हम छोड़ दें तो तेजी से एवं शुद्ध स्तर पर गणनाएं करने की गुणन सारणी एक सशक्त साधन है।

लघुगुणक

पंद्रहवीं शताब्दी के दौरान पाश्चात्य देशों जैसे कि ग्रेट ब्रिटेन, डेनमार्क, स्पेन और पुर्तगाल आदि ने बड़े जोर-शोर से अपने समुद्री अभियान चलाए। समुद्र में नौसंचालन

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
2	2	4	6	8	10	12	14	16	18	20
3	3	6	9	12	15	18	21	24	27	30
4	4	8	12	16	20	24	28	32	36	40
5	5	10	15	20	25	30	35	40	45	50
6	6	12	18	24	30	36	42	48	54	60
7	7	14	21	28	35	42	49	56	63	70
8	8	16	24	32	40	48	56	64	72	80
9	9	18	27	36	45	54	63	72	81	90
10	10	20	30	40	50	60	70	80	90	100

चित्र 22

सितारों, ग्रहों और तारामंडलों की ठीक-ठीक स्थितियों के ज्ञान पर निर्भर होता था। इसके लिए विशुद्ध त्रिकोणमितीय सारणियों का सृजन आवश्यक था, जिसमें जटिल गणनाओं का सहारा लेना पड़ता था। इन्हीं गणनाओं के सरलीकरण के लिए ही लघुगुणक का जन्म हुआ।

लघुगुणक गुणा के सवाल को जोड़ में तथा भाग के प्रश्न को घटा में परिवर्तित कर देते हैं। इससे गणना कार्य अति सहज हो जाता है।

कम्प्यूटर

अभिकलन के लिए आज तक बने सभी यंत्रों में सबसे अधिक दक्ष इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटर ही है। न केवल इससे विशाल संख्याओं की गणनाओं का काम लिया जा सकता है बल्कि अति द्रुत गति एवं शुद्धता भी इसमें मौजूद होती है। कम्प्यूटर के अंदर इलेक्ट्रानिक परिपथ होते हैं जो गणना कार्य में प्रयुक्त होने वाली तार्किक क्रियाओं को अंजाम देते हैं। मगर एक कम्प्यूटर शब्दों की भाषानुसार कार्य नहीं करता है। यह संख्याओं की भाषा के सहारे ही काम करता है तथा इस भाषा के सभी शब्द केवल 1 और 0 केवल इन दो अंकों पर ही आधारित होते हैं। चूंकि द्विआधारी प्रणाली में केवल दो ही अंकों, 1 और 0 का प्रयोग होता है, इसलिए

समस्त संख्याओं को 2 के घातांकों के रूप में ही व्यक्त किया जाता है। स्थान-मानों को नीचे दर्शाया गया है :

$$2^8\ 2^7\ 2^6\ 2^5\ 2^4\ 2^3\ 2^2\ 2^1\ 2^0$$

इस स्थान-मान पद्धति का इस्तेमाल कर संख्याओं के मानों को दस-आधारी से द्विआधारी प्रणाली में निम्नानुसार बदला जा सकता है :

1 = 1
2 = 10
2 = 11
4 = 100
5 = 101
6 = 110
7 = 111
8 = 1,000
9 = 1,001
10 = 1,010 , इत्यादि।

किसी कम्प्यूटर परिपथ में 1 का अर्थ बंद तथा 0 का अर्थ खुले परिपथ के रूप में लिया जाता है। एक ऐसे प्रक्रम द्वारा जिसे प्रोग्राम कहते हैं, कम्प्यूटर को एक 'कोड' प्रेषित किया जाता है। साधारण भाषा को यह कोड कम्प्यूटर द्वारा बोधगम्य संख्याओं की भाषा में बदल देता है। संख्याओं की भाषा को साधारण भाषा में बदलने का कार्य भी कोड अंजाम देता है। गणना कार्य करते समय कम्प्यूटर गुणा के सवाल को जोड़ तथा भाग के प्रश्न को घटा में बदल देता है। एकबारगी तो यह काल गति में पीछे की तरफ, आदिम तरीके पर ही जाने जैसी बात प्रतीत होती है। परंतु इन जोड़ या घटा की संक्रियाओं को कम्प्यूटर इतनी तेजी के साथ अंजाम देता है कि शिकायत जैसी कोई चीज बाकी नहीं रहती है। आजकल बहुत ही उन्नत किस्म के कम्प्यूटर प्रोग्राम उपलब्ध हैं जो सैकड़ों समीकरणों को हल करने से लेकर चित्रांकन एवं पुस्तक प्रकाशन, यहां तक कि यात्री-आरक्षण जैसे हर तरह के जटिल कार्यों को निपटाने में सक्षम हैं! कम्प्यूटर यकीनन आधुनिक जीवन का एक जरूरी अंग बन गए हैं। ऐसा लगता है जैसे हम उस संसार में जी रहे हैं जिसने 'एक ही साधे सब सधै' का कथन सही रूप से चरितार्थ होता है और निर्विवाद रूप से यह 'एक' कम्प्यूटर ही है।

3

चर राशियां

गणित रोजमर्रा की घटनाओं से जुड़ा हुआ है। ये घटनाएं विविध प्रकार की हो सकती हैं।

अज्ञात या चर राशियों से हमारा रोजाना न जाने कितनी बार वास्ता पड़ता है। मसलन जब हम बस से सफर करते हैं तो बस की गति बदलती रहती है। बस के हर स्टाप के साथ मुसाफिरों की संख्या तथा कंडक्टर को प्राप्त होने वाली रकम में भी परिवर्तन होता रहता है। वस्तुतः जीवन के साथ रची-बसी हैं चर राशियां। किसी व्यक्ति का मासिक खर्चा, व्यापार में कमाया गया मुनाफा, फसल की उपज, सालाना होने वाली वर्षा, वायु का तापमान, पौधों की ऊंचाई, यहां तक कि दिन की लंबाई तक सभी चर राशियों के दायरे में ही आते हैं।

हिंदू गणितज्ञों ने ही सर्वप्रथम अज्ञात या चर राशियों के निरूपण की आवश्यकता को पहचान कर उनके लिए नए संकेतों का प्रयोग किया था। 300 ईसा पूर्व से भी काफी पहले की एक हस्तलिपि में *यावत-तावत* शब्द जिसका अर्थ था 'जितनी भी' या 'जितना कुछ' का प्रयोग किसी अज्ञात राशि के निरूपण के लिए किया गया था। बाद में चल कर *यावत-तावत* की जगह *अव्यक्त* (ज्ञात राशि को सूचित करने वाले *व्यक्त* का उल्टा) शब्द का इस्तेमाल गणितज्ञों ने किया जिसका अर्थ था 'कोई अज्ञात राशि'।

आधुनिक खोजों से पता चला है कि बेबीलोन निवासियों ने चर राशि वाले गणितीय प्रश्नों के हल ढूंढ़ लिए थे हालांकि ऐसी राशियों को व्यक्त करने के लिए उनके पास कोई प्रतीक चिह्न नहीं थे। ऐसी संख्याओं को दर्शाने के लिए वे शब्दों का ही सहारा लेते थे। यही कारण है कि उनके बीजगणित को 'रेटोरिकल अलजेब्रा' की संज्ञा दी गई है। 1600 ईसा पूर्व में मिस्र देश के पेपीरस नामक पत्र पर बीजगणित के बहुत-से प्रश्न उल्लिखित हैं जिनमें अज्ञात राशि को 'ढेरी' के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले *हाऊ* की संज्ञा दी गई है।

आर्यभट्ट प्रथम, ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्य द्वितीय कुछ ऐसे नामी-गिरामी हिंदू गणितज्ञ थे जिन्हें बीजगणित अर्थात् चर राशियों के गणित के प्रतिपादन और उसके

परिमार्जन का श्रेय जाता है। बीजगणित का शाब्दिक अर्थ है 'अक्षरों का गणित'।

इस विषय-क्षेत्र में फिर बहुत कम प्रगति हो पाई जब तक कि तीसरी सदी के यूनानी गणितज्ञ डायोफेंटस का पदार्पण नहीं हुआ। उसने गणितीय सवालों को समीकरणों का रूप दिया। इनमें अज्ञात राशि को यूनानी संकेत $\sum$ (सिग्मा) द्वारा दर्शाया गया था। उसने संकेताक्षरों की एक रोचक पद्धति का विकास भी किया जिसमें शब्दों का बस पहला अक्षर ही लिया जाता और शेष निरर्थक अक्षरों को छोड़ दिया जाता था। सोलहवीं शताब्दी में फ्रांसिसी गणितज्ञ फ्रेंकॉइस वियता ने अंग्रेजी के व्यंजनों (a, e, i, o, u) का इस्तेमाल अज्ञात संख्याओं के निरूपण तथा स्वरों (b, c, d, f, g) आदि का इस्तेमाल अचर या अपरिवर्तनीय संख्याओं के लिए किया। सोलहवीं शताब्दी के महान फ्रांसिसी दार्शनिक रैने दस्कातिस ने वर्णमाला के शुरू-शुरू के अक्षरों (a, b, c) आदि को अचर राशियों को व्यक्त करने के लिए इस्तेमाल करने का सुझाव रखा। अज्ञात या चर राशियों को अक्षरों द्वारा व्यक्त करने की व्यवस्था ही बाद में अंकगणित की मूल धारणाओं के व्यापकीकरण तथा गणित के उन्नयन में महत्वपूर्ण साबित हुई।

'अलजेब्रा' शब्द का उद्भव मोहम्मद इब्न मूसा अल-ख्वारिज्मी नाम के फारसी व्यक्ति, जो नवीं शताब्दी में हुआ था, के बीजगणित पर लिखे एक ग्रंथ से हुआ। उसने अरबी में *अल-जब्र* या *अल् मुकाबला* नामक कृति का सृजन किया जिसका अर्थ था 'पुनः स्थापना तथा समानयन'। *अल-जब्र* या पुनः स्थापना ऋण संख्याओं को समीकरण के दूसरी तरफ ले जाकर उन्हें धन संख्याओं में बदलने की क्रिया का द्योतक था। जब अरबवासी स्पेन गए तो वहां अपने साथ इस शब्द को भी लेते गए। कालांतर में *अल-जब्र* बदल कर अलजेब्रा हो गया, और इस शब्द का प्रयोग किसी संक्रिया विशेष के लिए नहीं अपितु बीजगणित में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न संक्रियाओं के लिए किया जाने लगा।

गणितीय क्रम (पैटर्न)

बीजगणित का एक सबसे महत्वपूर्ण परिक्रम है किसी भी पैटर्न या क्रम को उसके व्यापक रूप में सामने लेकर आना। मसलन गणित में जोड़ की क्रिया को ही लें। निम्न उदाहरणों को देखें :

$$3 + 4 = 7 = 4 + 3$$

$$5 + 10 = 15 = 10 + 5$$

$$6 + 7 = 13 = 7 + 6,$$ इत्यादि

अगर मध्य की संख्याओं को छोड़ दें तो उपरोक्त सह-संबंधों को हम निम्न रूप में लिख सकते हैं :

$$3 + 4 = 4 + 3$$
$$5 + 10 = 10 + 5$$
$$6 + 7 = 7 + 6$$

उक्त व्यंजकों में आने वाली संख्याओं को अक्षरों से व्यक्त करने पर हमें एक बीजीय व्यंजक अ + ब = ब + अ प्राप्त होता है जो अकेले ही उक्त सभी व्यंजकों को व्यक्त करने में सक्षम है। यह व्यंजक जोड़ की संक्रिया के एक खास गुणधर्म को कि दो संख्याओं का जोड़ एक-समान ही रहता है, चाहे उन्हें सीधा जोड़ा जाए या उल्टा, उजागर करता है। इस गुणधर्म को योग का क्रम-विनियम नियम कहते हैं। नीचे दिए गए नियम जोड़ और गुणन के महत्वपूर्ण गुणधर्मों को व्यक्त करते हैं जिनका रोजमर्रा की गणनाओं में व्यापक इस्तेमाल होता है। इनमें अ, ब, स किन्हीं भी तीन संख्याओं को सूचित करते हैं :

अ + ब = ब + अ	योग का क्रम-विनियम नियम
(अ + ब) + स = अ + (ब + स)	योग का साहचर्य नियम
अ × ब = ब × अ	गुणन का क्रम-विनियम नियम
(अ × ब) × स = अ × (ब × स)	गुणन का साहचर्य नियम
अ × (ब+स) = अ × ब + अ × स	गुणन का वितरण नियम जोड़ की स्थिति में।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है शून्य और उसके गुणधर्मों की खोज गणित के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। आर्यभट्ट एवं अन्य हिंदू गणितज्ञों ने शून्य के विशेष गुणों का विवेचन किया था। उन गुणों को उन्होंने उस वक्त की परंपरा के अनुसार श्लोकों के रूप में ही अभिव्यक्त किया था। आधुनिक संकेतों के जरिए इन गुणधर्मों को यूं व्यक्त किया जा सकता है :

अ + 0 = 0 + अ = अ

अ × 0 = 0 × अ = 0

अ − 0 = अ

अ ÷ 0 अपरिमित होता है परंतु शून्य से भाग देने की क्रिया के बारे में उन्हें इतना सुनिश्चित ज्ञात नहीं था।

अब देखें कि गणितीय क्रियाओं के ये नियम रोजमर्रा के जीवन में कैसे हमारे काम आते हैं। प्राप्त और व्यय होने वाली रकम का हिसाब-किताब हमारी एक मुख्य गतिविधि में शामिल है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि 50 रु., 100 रु., 45 रु. तथा 40 रु. की राशियों को जोड़कर कुल बनी राशि का हिसाब निकालना है अर्थात् हमें 50 + 100 + 45 + 40 संख्याओं का जोड़ प्राप्त करना है। बारी-बारी से दो

संख्याओं को जोड़कर योगफल की क्रिया इस तरह से सम्पन्न होती है :

$$\begin{aligned} 50 + 100 + 45 + 40 &= (50 + 100) + 45 + 40 \\ &= (150 + 45) + 40 \\ &= 195 + 40 \\ &= 235 \end{aligned}$$

मगर जोड़ को यदि निम्न विधि से भी किया जाए तो भी योगफल में कोई अंतर नहीं पड़ता है :

$$\begin{aligned} 50 + 100 + 45 + 40 &= 50 + 100 + (45 + 40) \\ &= 50 + (100 + 85) \\ &= 50 + 185 \\ &= 235 \end{aligned}$$

इस प्रकार संख्याओं को हम उल्टे-सीधे किसी भी क्रम में जोड़ सकते हैं। योग के क्रम-विनिमय तथा साहचर्य नियमों का यहां खुलकर हालांकि सहज अंतःप्रज्ञावश ही प्रयोग हुआ है। दैनिक जीवन में योग के साथ अक्सर ऐसा ही होता है। गुणा के साथ भी यही सत्य है। दो संख्याओं का गुणन 5×17 साधारणतया 17×5 लिख कर किया जाता है क्योंकि गुणनफल सारणी द्वारा इसका मान निकालना कहीं आसान है। तीन संख्याओं का गुणन निम्न विधि द्वारा सम्पन्न किया जाता है:

$$\begin{aligned} 12 \times 5 \times 2 &= (12 \times 5) \times 2 \\ &= 60 \times 2 \\ &= 120 \\ \text{या} &= 12 \times (5 \times 2) = 12 \times 10 = 120 \end{aligned}$$

कभी-कभी किसी कठिन गुणा को करने में भी यह विधा हमारी मदद करती है, जैसे संख्याओं के गुणनफल $137 \times (5 \times 2)$ को 137×10 की तरह निकालना $(137 \times 5) \times 2$ लिखकर गुणा करने की अपेक्षा कहीं सरल बैठता है। बड़ी संख्याओं को गुणा करने में गुणा के वितरण नियम अर्थात् अ × (ब + स) = अ × ब + अ × स का सहारा लिया जाता है। मिसाल के तौर पर 256×7 के गुणनफल को हम निम्न ढंग से प्राप्त करते हैं :

$$\begin{aligned} 256 \times 7 &= (200 + 50 + 6) \times 7 \\ &= 1{,}400 + 350 + 42 \\ &= 1{,}792 \end{aligned}$$

व्यवहार में ऐसे गुणनफलों को हम दिमाग में ही अंकों को गुणा करके शेष बची राशि को यथास्थान यानी दहाई (10) या सैकड़े (100) के स्थान पर रख कर करते हैं। ये सभी नियम हमारे रोजमर्रा के जीवन के साथ अभिन्न रूप से जुड़ गए हैं।

समता संबंध

किसी बीजीय व्यंजक में आने वाले अक्षरों को जब संख्याओं से बदला जाता है तो हमें उस व्यंजक का मान प्राप्त होता है। इस तरह से अगर दो व्यंजकों का मान निकाला जाए तो संयोग से वे दोनों बराबर भी हो सकते हैं। ऐसे व्यंजकों को *तुल्य* (समान मान वाले) व्यंजक कहा जाता है। गणित की भाषा में हम तब कहते हैं कि दो व्यंजकों के मध्य *समता संबंध* है। इस संबंध को एक समीकरण के रूप में व्यक्त किया जाता है। मसलन अ × (ब + स) तथा अ × ब + अ × स दो तुल्य व्यंजक हैं।

अधोलिखित मानों को अगर हम लें :

अ = 2, ब = 3, स = 4; तो

अ × (ब + स) = 2 × (3 + 4)

= 2 × 7

= 14

एवं अ × ब + अ × स = 2 × 3 + 2× 4

= 6 + 8

= 14

इस संबंध को हम यूं व्यक्त करते हैं : अ × (ब + स) = अ × ब + अ × स

तुल्य व्यंजकों के अनेक प्रकार होते हैं। हमारे दैनिक जीवन तथा विज्ञान और गणित के क्षेत्र में इनका व्यापक रूप से इस्तेमाल होता है। यहां दिए गए प्रश्न पर गौर करें : एक फुटबाल क्लब में तीन नए सदस्य बने। एक महीने बाद आधे सदस्य क्लब छोड़ गए। फिर दो महीने बाद जब दस और सदस्य क्लब के साथ आ जुड़े तो उसके सदस्यों की संख्या क्लब के मूल सदस्यों की संख्या के बराबर हो गई। बताइए कि शुरू में क्लब में कितने सदस्य थे?

माना कि शुरू में सदस्यों की संख्या य थी। जब तीन नए सदस्य क्लब के साथ आ जुड़े तो सदस्यों की कुल संख्या दो गई य + 3। जब उनमें से आधे सदस्य छोड़ गए तो $\frac{\text{द} + 3}{2}$ सदस्य शेष रह गए। फिर जब क्लब की सदस्यता में 10 की वृद्धि हुई तो इसके कुल सदस्यों की संख्या हुई $\frac{\text{द} + 3}{2} + 10$ । यह चूंकि क्लब के मूल सदस्यों यानी य के बराबर है :

$$\frac{\text{य} + 3}{2} + 10 = \text{य}$$

$$2\left[\frac{\text{य} + 3}{2} + 10\right] = 2\ \text{य}$$

$$\therefore \text{य} + 3 + 20 = 2\,\text{य}$$
$$\therefore \text{य} + 23 = 2\,\text{य}$$
$$\therefore \text{य} + 23 - \text{य} = 2\,\text{य} - \text{य}$$
$$23 = \text{य}$$

अतः क्लब के मूल सदस्यों की संख्या 23 थी।

समीकरणों के निकाय

अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक *लीलावती* में भास्कराचार्य ने एक सवाल दिया है : "हे छात्र! अगर हल कर सको तो हल करके बताओ कि वे दो संख्याएं कौन-सी हैं जिनका योग 101 तथा अंतर 25 है?" आइए, इस सवाल का हल समीकरणों द्वारा ज्ञात करने की कोशिश करें। मान लीजिए कि अभीष्ट संख्याएं य और र हैं। हम तब निम्न समीकरणों को लिख सकते हैं :

$$\text{य} + \text{र} = 101$$

और
$$\text{य} - \text{र} = 25$$
$$(\text{य} + \text{र}) + (\text{य} - \text{र}) = 101 + 25$$
$$2\,\text{य} = 126$$
$$\text{य} = 63$$

अब यह दिया हुआ है कि

$$\text{य} + \text{र} = 101$$

अर्थात्
$$63 + \text{र} = 101$$
$$\text{र} = 101 - 63$$
$$\text{र} = 38$$

अतः अभीष्ट संख्याएं 63 और 38 हैं।

अनुक्रम

दो दोस्तों में बात चल रही थी। एक दोस्त ब ने दूसरे के सामने यह प्रस्ताव रखा, "मैं तुम्हें एक महीने तक पहले दिन 1,000 रुपये, दूसरे दिन 2,000 रुपये, तीसरे दिन 3,000 रुपये के हिसाब से बढ़ाते हुए रुपये दूंगा। बदले में तुम पहले दिन एक पैसा, दूसरे दिन दो पैसे और इस तरह हर दिन पिछले दिन की रकम को दुगना करते हुए एक महीने तक मुझे लगातार देते रहोगे।" दूसरे मित्र अ ने अपने मित्र के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। मगर बाद में उसे बड़ी कोफ्त हुई तथा अपने निर्णय पर बेहद पछतावा हुआ। कारण का अनुमान क्या आप लगा सकते हैं?

आइए, जरा देखें कि रोजाना किसको कितनी राशि प्राप्त हुई :

दिन	अ (रुपये)	ब (रुपये)
1	1,000	.01
2	2,000	.02
3	3,000	.04
4	4,000	.08
5	5,000	.16
6	6,000	.32
7	7,000	.64
8	8,000	1.28
9	9,000	2.56
10	10,000	5.12
11	11,000	10.24
12	12,000	20.48
13	13,000	40.96
14	14,000	81.92
15	15,000	163.84
16	16,000	327.68
17	17,000	655.36
18	18,000	1,310.72
19	19,000	2,621.44
20	20,000	5,242.88
21	21,000	10,485.76
22	22,000	20,971.52
23	23,000	41,943.04
24	24,000	83,886.08

अब आप पर यह रहस्योद्घाटन हुआ कि अ को क्यों पछताना पड़ा? दरअसल तेइसवें दिन उसे उस दिन तक प्राप्त रकम से लगभग दुगनी रकम ब को चुकानी पड़ी थी।

बता सकते हैं कि ब अपने मित्र अ से कैसे बाजी मार ले गया जबकि उसने केवल एक पैसे से ही रकम लेने की शुरुआत की थी? आइए, देखें कि संख्याएं दोनों के लिए किस तरह से बढ़ती गईं :

	दिन-1	दिन-2	दिन-3	दिन-4
अ के लिए	1,000	2,000	3,000	4,000 . . .
अर्थात्	1,000	1,000 + 1,000	2,000 + 1,000	3,000 + 1,000 ...
ब के लिए	0.01	0.02	0.04	0.08 . . .
	0.01	0.0 1×2	0.0 2×2	0.0 4×2. . .

हम देखते हैं कि संख्याएं एक अनुक्रम की तरह क्रमबद्ध तरीके से बढ़ती जाती हैं। पहले अनुक्रम में हर संख्या अपनी पूर्ववर्ती संख्या से 1000 अधिक है जबकि दूसरे अनुक्रम में हर संख्या अपनी पिछली संख्या की दुगनी है। इस तरह हम देखते हैं कि जोड़ने से अनुक्रम धीरे-धीरे जबकि गुणा करने से तेजी के साथ बढ़ते हैं। पहले किस्म के अनुक्रम को *समांतर श्रेणी* जबकि दूसरे किस्म के अनुक्रम को *गुणोत्तर श्रेणी* कहते हैं। इस तरह के अनुक्रम बीजगणित की विषयवस्तु के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण अंग माने जाते हैं।

श्रेणी : अनुक्रम के पदों को जोड़ना

छोटे बच्चों की एक कक्षा में शिक्षक ने छात्रों को 1 से लेकर 100 तक की संख्याओं को जोड़ने का मुश्किल प्रश्न दे दिया। शिक्षक को उम्मीद थी कि जब बच्चे उस सवाल को हल करने में व्यस्त होंगे, उसे कुछ समय का आराम मिल जाएगा। मगर उसे घोर आश्चर्य हुआ जब अपना सवाल अभी उसने मुश्किल से लिखा ही था कि एक छात्र ने स्लेट पर झट उत्तर लिख कर दिखा दिया। सवाल का सही जवाब था 5050। यह छात्र और कोई नहीं बल्कि फ्रेडरिक गौस ही था, जो बाद में चलकर महान गणितज्ञ बना। असल में संख्याओं को सीधे-सीधे जोड़ने की बजाय गौस ने यह गौर कर लिया था कि जोड़ को ऐसे भी लिखा जा सकता है (1 + 100) + (2 + 99) + (3 + 98) + . . . यानी उसने भांप लिया था कि इस तरह संख्याओं के 50 जोड़े बन रहे थे जिनमें से हरेक का जोड़ 101 था; अतः सीधे-सीधे योगफल निकल आया 50 × 101 = 5,050। दरअसल इसी विधि का इस्तेमाल किसी समांतर श्रेणी का जोड़ निकालने के लिए किया जाता है। किसी गणित श्रेणी का योग जिसका प्रथम पद अ, तथा कुल पदों की संख्या न तथा पदों के मध्य का सामान्य अन्तर द है, निम्न सूत्र द्वारा दिया जाता है :

$$S_{\text{न}} = \frac{\text{न}}{2} \quad [2\text{ अ} + (\text{न} - 1)\text{ द}]$$

उक्त सूत्र में अगर हम अ = 1, द = 1 और न = 100 रखें तो योग निकलता है :

$$\text{योग } (S_{100}) = \frac{100}{2}[2+99] = 50\times101 = 5,050$$

गणितज्ञ गौस अपनी अनोखी प्रतिभा के बल पर संख्याओं के बीच बनने वाले पैटर्नों को चुटकियों में ही भांप गए थे।

किसी ज्यामिति श्रेणी के प्रश्न में प्रथम न पदों का योग जिसका प्रथम पद अ एवं सामान्य अनुपात र है, निम्न सूत्र से निकाला जा सकता है :

$$\text{योग } S_{\text{न}} = \frac{\text{अ } (\text{र}^{\text{न}} - 1)}{\text{र} - 1}$$

अब हम गणना कर पता लगा सकते हैं कि महीने के अंत में दोनों मित्रों के हिस्से आखिर कितनी रकम आई। मित्र अ को प्राप्त होने वाली रकम थी :

$$\begin{aligned} \text{रकम } S_{\text{न}} &= \frac{30}{2}[2\times 1{,}000+(30-1)\times 1{,}000] \\ &= 15\ [2{,}000\ +\ 29{,}000] \\ &= 15\times 31{,}000 \\ &= 4{,}65{,}000 \text{ या } 4{,}65{,}000 \text{ रुपये} \end{aligned}$$

मित्र ब के हिस्से में आने वाली रकम थी :

$$\begin{aligned} \text{रकम } S_{\text{न}} &= \frac{1(2^{30}-1)}{(2-1)} \\ &= 2^{30} - 1 \\ &= 1073741823 \text{ पैसे या } 1{,}07{,}37{,}418.23 \text{ रुपये} \end{aligned}$$

वास्तविक जीवन में गणित

गणित को हम एक ऐसा दर्पण मान सकते हैं जिसमें जीवन का प्रतिबिंब झलकता है। किसी भी वास्तविक समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए 'आश्चर्यनगरी में एलिस' की तरह गणितज्ञ भी गणित रूपी दर्पण में बनने वाले जीवन के 'छाया संसार' (प्रतिबिंब) में विचरण करते हुए अपनी कल्पना के बल पर उस समस्या का हल निकाल कर फिर उस हल के साथ वास्तविक संसार में लौट सकता है। आइए, एक सीधा-सा सवाल लेकर देखते हैं कि गणित इसे हल करने में हमारी कैसे मदद करता है।

किसी छात्रावास का मासिक खर्चा 7000 रु. से बढ़ कर 9000 रु. हो जाता है जब उसमें रहने वाले छात्रों की संख्या 12 से बढ़कर 16 हो जाती है। छात्रावास को किराए के रूप में हर महीने एक निश्चित राशि चुकानी पड़ती है तथा रोजमर्रा के खर्चे के रूप में भी प्रति छात्र कुछ राशि खर्च करनी पड़ती है। बताइए कि किराया और प्रति छात्र खर्च कितना है?

मूल सवाल को उसके गणितीय रूप में बदलने के लिए विभिन्न राशियों के लिए हम अक्षरों का इस्तेमाल करेंगे। मान लीजिए कि छात्रावास के कुल छात्रों की

संख्या म, प्रति छात्र खर्च होने वाली रकम अ, किराया क तथा छात्रावास का कुल मासिक खर्च ख है। तब कुल खर्च ख के लिए हम निम्न समीकरण लिख सकते हैं :

ख = म × अ + क

प्रश्न में दिए गए म तथा ख के मानों को रखने पर :

7,000 = 12 अ + क . . . . (1)

और 9,000 = 16 अ + क . . . . (2)

दो युगपत समीकरणों का हल निकालने की गणितीय समस्या ही अब हमारे पास बची है। समीकरण (1) को समीकरण (2) से घटाने पर हमें निम्न परिणाम प्राप्त होता है:

2000 = 4 अ

अ = 500

अब समीकरण (1) में अ का मान रखने पर :

7000 = 6000 + क

क = 1000

प्रश्न का गणित पक्ष यहीं खत्म हो जाता है। अब व्यवहार में हमें इस परिणाम की व्याख्या करनी है। सीधा-सा निष्कर्ष यह निकला कि प्रति छात्र पर खर्च होने वाली रकम 500 रु. तथा किराया 1,000 रु. है।

कथित सवाल का हल ज्ञात करने के लिए विभिन्न राशियों के लिए अक्षरों का इस्तेमाल करके हमने पहले निम्न समीकरण का गठन किया

ख = म × अ + क

जो मूलतः सवाल का गणितीय प्रतिरूप ही है। इस विधि को *गणितीय प्रतिरुपण* कहते हैं। यह हमें वास्तविक जीवन से जुड़े सवालों को हल करने में एक सशक्त साधन प्रदान करता है। कम्प्यूटरों द्वारा आजकल किसी गणितीय प्रतिरूप को उसमें आने वाली चर राशियों के मानों को बदल कर जांचा-परखा जा सकता है, और इस तरह सबसे संगत माडल का चयन किया जा सकता है। इसका उपयोग मौसमविज्ञान, वैज्ञानिकी, द्रवगतिविज्ञान, नाभिकीय भौतिकी, सामाजिकविज्ञान जैसे कि अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा संसारविज्ञान से संबद्ध जटिल समस्याओं के हल ढूंढ़ने में किया जा सकता है।

4

अनुपात : वस्तुओं की तुलना

दैनिक जीवन में किसी वस्तु की खरीदारी या दो नौकरियों के बीच चयन आदि करते समय हम अक्सर दो वस्तुओं की तुलना करते हैं। ऐसी तुलनाएं कि 'कलकत्ता मुंबई से बड़ा है', 'सुभाष सतीश से ताकतवर है', 'कल्पना गणित में कविता से अच्छी है' आम की जाती हैं। मगर ये सभी कथन गोलमोल-से ही हैं क्योंकि इनसे कोई स्पष्ट धारणा उभर कर नहीं आ पाती है कि कितना बड़ा या कितना ताकतवर। वस्तुओं की तुलना सही ढंग से की जा सकती है यदि उन्हें संख्यात्मक मान प्रदान किए जाएं। गणित के स्थापित नियमों का सहारा लेकर हम फिर उन संख्याओं की आपसी तुलना कर सही निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं। उदाहरण के लिए, अगर कलकत्ता और मुंबई की जनसंख्याएं क्रमशः एक करोड़ तथा अस्सी लाख ली जाएं तो हम कह सकते हैं कि मुंबई से बड़ा शहर कलकत्ता है क्योंकि 80 लाख से एक करोड़ बड़ी संख्या है। अतः दो वस्तुओं की तुलना के लिए हम उन संख्याओं की तुलना करते हैं जो उन वस्तुओं के लिए आरोपित हैं। हमारी मूल समस्या तब सिर्फ दो वस्तुओं की तुलना के रूप में सीमित हो जाती है।

दो संख्याओं की तुलना हम दो तरीकों से कर सकते हैं। मान लीजिए कि ऐसी दो संख्याएं अ और ब हैं। हम उनका अंतर अ − ब ज्ञात कर सकते हैं जैसे कि $14 - 10 = 4$ अर्थात् संख्या 14 संख्या 10 से चार अधिक है। दूसरे ढंग में हम एक संख्या को दूसरी संख्या से भाग देकर तुलना कर सकते हैं। अगर 20 और 10 की दो संख्याओं को हम लें तो $\frac{20}{10} = \frac{2}{1}$। यानी संख्या 20 संख्या 10 की दो गुणा है। या इस तरह भी अनुपात को हम लिख सकते हैं $\frac{10}{20} = \frac{1}{2}$ जिसका अर्थ हुआ कि संख्या 10 संख्या 20 की $\frac{1}{2}$ है। अतः व्यापक रूप से किसी अनुपात द्वारा ऐसे प्रश्नों के उत्तर जैसे कि "एक संख्या दूसरी संख्या की कितनी गुणा है?" या "एक संख्या दूसरी संख्या का कौन-सा हिस्सा है" हमें मिल सकते हैं। इसी बात को यूं भी कहा जा सकता है कि 20 और 10 में 2 और 1 का अनुपात है। अनुपात निकाल कर दो संख्याओं की तुलना करना एक आम तरीका है जो बेहद उपयोगी

भी है। मिसाल के तौर पर यह कहना कि 50 संख्या 100 का $\frac{1}{2}$ है, इस कथन की अपेक्षा कि 50, संख्या 100 से 50 कम है, कहीं बेहतर है।

अनुपातों को विभिन्न तरीकों से व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए अपनी दक्षता का गुणगान करते हुए कोई कम्पनी अपनी रिपोर्ट में यह कहती है, "इस वर्ष मुनाफा दुगना हो गया है।" इसवा अर्थ यह निकला कि इस वर्ष और पिछले वर्ष के मुनाफों के बीच का अनुपात $\frac{2}{1}$ है। बोनस के रूप में दिए जाने वाले शेयरों के बारे में एक और कम्पनी यह घोषणा करती है कि वह 1 : 2 के अनुपात में उनका आबंटन करेगी। मतलब यह हुआ कि शेयरधारक को अपने पास रखे हर दो शेयरों के पीछे एक शेयर बोनस के रूप में प्राप्त होगा। किसी गांव की साक्षरता का जिक्र छिड़ने पर यह कहा जाता है कि गांव के हर तीन साक्षर व्यक्तियों के पीछे एक निरक्षर है। अर्थात् निरक्षरों और साक्षरों के बीच $\frac{3}{1}$ का अनुपात है। अनुपातों को कई बार दूसरे ढंग से भी व्यक्त किया जाता है। जैसे कि उक्त उदाहरण में आने वाला $\frac{3}{1}$ का अनुपात 3 : 1 की तरह से भी लिखा जा सकता है। इसी तरह $\frac{2}{3}$ के अनुपात को 2 ÷ 3 या 2 : 3 की तरह तथा अन्य अनुपातों को भी इसी ढंग से व्यक्त किया जा सकता है।

किसी अनुपात को जब $\frac{\text{अ}}{\text{ब}}$, जहां अ और ब एंटैगर नहीं है और ब 0 के बराबर में नहीं होता, के रूप में लिखा जाता है तब इसे परिमेय संख्या माना जा सकता है। अतः परिमेय संख्या संबंधी नियमों का पालन अनुपातों के प्रयोग के दौरान किया जाता है। जैसे, मान लीजिए कि $\frac{2}{3}$ और $\frac{7}{8}$ दो अनुपात हैं। अब यह पता लगाना जरूरी है कि दोनों में से कौन सा अनुपात बड़ा है तो उनकी तुलना के लिए दो टुकड़ों के रूप में उन्हें व्यक्त किया जा सकता है। अब $\frac{2}{3} = \frac{16}{24}$ और $\frac{7}{8} = \frac{21}{24}$ के ढंग से दोनों अनुपातों को लिखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में $\frac{7}{8}$ ही बड़ा है।

मगर तब सावधानी बरते जाने की जरूरत होती है जब तुलना की जाने वाली राशियां सीधी-सीधी सख्याएं न होकर इकाइयों के रूप में व्यक्त की गई हों। जैसे कि इस सवाल में कि कौन सा समय अधिक है, 150 मिनट या 3 घंटे ? यहां पर राशियां एक दूसरे से भिन्न इकाइयों में दी गई हैं और सीधे-सीधे उनकी तुलना संभव नहीं है जब तक कि उन्हें एक-समान इकाइयों में बदल न दिया जाए। तीन

घंटे में 180 मिनट होते हैं और 150 मिनटों की तुलना सरलतापूर्वक की जा सकती है। 150 मिनट ढाई घंटे के बराबर होते हैं और ढाई एवं तीन घंटों की तुलना आसानी से हो सकती है।

प्रतिशतता

व्यवहार में अनुपातों के प्रयोग एवं उनकी तुलना विविध तरीकों से की जाती है। एक छात्र को भाषा में 100 में से 75 और विज्ञान में 150 में से 120 अंक प्राप्त होते हैं। दोनों में से कौन से विषय में उसके प्रश्नपत्र अच्छे हुए? दोनों अनुपातों $\frac{75}{100}$ एवं $\frac{120}{150}$ की परस्पर तुलना करके हमें इस बात का जवाब मिल सकता है। अब : $\frac{75}{100}=\frac{225}{300}$ और $\frac{120}{150}=\frac{240}{300}$। दोनों अनुपातों $\frac{225}{300}$ और $\frac{240}{300}$ की आपसी तुलना से यह साफ झलकता है कि उसने विज्ञान में भाषा की तुलना में ज्यादा अच्छे अंक प्राप्त किए। यहां पर हमने 300 को दो अनुपातों के समान दर के रूप में लिया है। सिद्धांतया, समान दर के रूप में किसी भी संख्या को हम ले सकते हैं। व्यवहार में संख्या 100 को समान दर के रूप में लेकर अनुपात को प्रतिशत के रूप में लिखा जाता है। जैसे कि 100 में से 75 अंकों को 75 प्रतिशत अंक कहते हैं। प्रतिशत शब्द का अर्थ है हर सैकड़े के पीछे। इस प्रकार $\frac{120}{150}=\frac{80}{100}$। अतः 150 में से 120 वही मायने रखता है जो कि 100 में से 80 अर्थात् 80 प्रतिशत। सौ के गुणांक में किसी भी अनुपात को लेने पर *प्रतिशतता* प्राप्त होती है। दैनिक जीवन में परीक्षा में प्राप्त अंक, विभिन्न परीक्षाओं के परिणाम, किसी आबादी में साक्षरों एवं निरक्षरों की संख्याएं तथा इसी तरह की कई अन्य राशियां प्रतिशतता के रूप में ही व्यक्त की जाती हैं।

समानुपात

हमें अक्सर ऐसी अभिव्यक्तियां सुनने को मिलती हैं कि 'जितने लोग उतना मजा', 'जिसको जितना मिलता है वह और भी पाने की लालसा रखता है', 'कोई पानी के जितना नीचे जाता है उतना ही दबाव भी बढ़ता जाता है', 'जितनी ऊंचाई पर कोई जाता है उतनी ही हवा भी ठंडी होती जाती है', आदि। ऐसी अभिव्यक्तियां दो वस्तुओं के आपसी संबंध को दर्शाती हैं। अगर एक बदलता है तो दूसरा भी उसके समान या विपरीत रूप में बदलता है। मिसाल के तौर पर पानी के नीचे की गहराई जैसे-जैसे बढ़ती है वैसे-वैसे जल का दबाव भी बढ़ता जाता है। उसी तरह गहराई कम होने से दबाव भी कम होता जाता है। यहां हम देखते हैं कि 'गहराई' और 'दबाव' दोनों ही राशियां साथ-साथ बढ़ती या घटती हैं। इसके ठीक उल्टे समुद्र

तल से जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ती है वैसे-वैसे वायु के तापमान में भी कमी आती जाती है। अतः ऊंचाई और वायु के तापमान में परिवर्तन परस्पर विपरीत रूप से होते हैं।

कुछ और उदाहरण लेते हैं जिनमें परस्पर संबंधित दो वस्तुओं में एक दूसरे के समान परिवर्तन होते हैं। किसी पुस्तक की खरीदी गई प्रतियां और उनके मूल्य के बीच के संबंध पर गौर करें :

पुस्तकों की संख्या	मूल्य (रु.)
10	200
20	400
50	1,000

यहां हम देखते हैं कि पुस्तकों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ उनकी कुल कीमत भी बढ़ती जाती है। अब जरा $\frac{10}{20}$ और $\frac{200}{400}$ इन दो अनुपातों पर विचार करें। हम पाते हैं कि $\frac{10}{20} = \frac{200}{400} = \frac{1}{2}$। उसी तरह $\frac{10}{50} = \frac{200}{1000} = \frac{1}{5}$। अतः दोनों अवस्थाओं में ही तत्संबंधी राशियों के संगत मानों के आपसी अनुपात बराबर रहते हैं। दो अनुपात अगर बराबर हों तो उनमें प्रयुक्त होने वाली चारों राशियों को एक दूसरी के समानुपाती कहते हैं। अगर $\frac{अ}{ब} = \frac{स}{द}$ तो अ, ब, स, द एक दूसरे की समानुपाती होंगी बशर्ते कि उन्हें उसी क्रम में ही लिखा गया हो। अर्थात् अ, ब, स, द तो परस्पर समानुपाती होंगी मगर अ, द, ब, स नहीं। विलोमस्वरूप अगर यह दिया गया हो कि अ, ब, स, द एक दूसरे की समानुपाती हैं तो उनमें परस्पर संबंध होगा $\frac{अ}{ब} = \frac{स}{द}$। संख्याओं अ, ब, स, द को दिए गए *समानुपात के पदों* की संज्ञा दी जाती है। जब किसी समानुपात के तीन पद ज्ञात हों तो चौथे को सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है। आगे दिया गया प्रश्न इसी सिद्धांत पर ही आधारित है जिसका हल हम तदनुसार निकाल सकते हैं।

किसी व्यक्ति ने एक पुस्तक की तीन प्रतियां 75 रु. में खरीदीं। बताइए कि 300 रु. में वह व्यक्ति पुस्तक की कितनी प्रतियां खरीद सकता है?

अगर पुस्तक की प्रतियों को य से सूचित करें तो हमें निम्न-संबंध प्राप्त होता है :

$$\frac{3}{75} = \frac{य}{300}$$

$$य = \frac{3}{75} \times 300 = 12$$

अतः वह व्यक्ति पुस्तक की 12 प्रतियां खरीद सकता है।

एक और उदाहरण लीजिए। 50 कि. मी. प्रति घंटे की रफ्तार से चल रही एक मोटर गाड़ी द्वारा तय की हुई दूरी समय के साथ बढ़ती जाती है जैसा कि नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट है :

समय (घंटों में)	*दूरी (कि.मी. में)*
1	50
2	100
3	150
4	200

उपरोक्त उदाहरणों में संबद्ध राशियां जैसे कि पुस्तक और प्रतियां और कुल कीमत, समय और दूरी आदि एक-समान रूप से अर्थात् साथ-साथ बढ़ते हैं। ऐसी राशियां *अनुलोम समानुपात* कहलाती हैं। कभी-कभी संबद्ध राशियां विपरीत रूप से भी बदलती हैं जैसे कि एक बढ़ती है तो दूसरी घटती है या एक के घटने पर दूसरी बढ़ती है। अधोलिखित प्रश्न पर विचार करें :

एक हजार रुपयों के कर्ज की राशि मासिक किस्तों में चुकाई जानी है। कर्ज की अदायगी में लगने वाला समय किस्त की रकम पर ही निर्भर करेगा। इसके लिए निम्नानुसार तालिका तैयार की जा सकती है :

रकम (रुपयों में)	*समय (महीनों में)*
100	10
200	5
250	4
500	2

हम देखते हैं कि जैसे-जैसे किस्त की रकम बढ़ती जाती है वैसे-वैसे कर्ज की अदायगी की मियाद भी कम होती जाती है। यानी किस्त की दो रकमों का अनुपात तत्संबंधी समयावधियों के अनुपात का गुणनात्मक प्रतिलोम (मल्टीप्लीकेटिव इंवर्स) है। उदाहरण के लिए :

$\frac{100}{200}=\frac{1}{2}$, $\frac{10}{5}=\frac{2}{1}$ जो $\frac{1}{2}$ का प्रतिलोम है; एवं

$\frac{200}{500}=\frac{2}{5}$ और $\frac{5}{2}$ इसका प्रतिलोम है

ऐसी अवस्था में 100, 200, 10, 5 प्रतिलोम समानुपात द्वारा एक दूसरे से संबंधित कहलाएंगी।

वितत समानुपात

एक और रोचक किस्म का समानुपात चार की बजाय तीन पदों के मध्य होता है।

ऐसे में बीच का पद पहले तथा तीसरे दोनों पदों के साथ समानुपात में होता है :

$$\frac{अ}{ब} = \frac{ब}{स}$$

$$अ\ स = ब^2$$

$$ब = \sqrt{अ\ स}$$

अर्थात् मध्य पद प्रथम और तृतीय पदों के गुणनफल के वर्गमूल के बराबर है। मध्य पद को अन्य दोनों पदों का गुणोत्तर माध्य कहा जाता है। विज्ञान तथा गणित की अनेक शाखाओं में एक अहम् सांख्यिकीय औसत के रूप में इसका इस्तेमाल होता है। किसी समानुपात के साझे पद की धारणा का विस्तार तीन से अधिक पदों पर भी किया जा सकता है। ऐसे समानुपात को *वितत समानुपात* कहते हैं। उदाहरण के लिए अगर $\frac{अ}{ब} = \frac{ब}{स} = \frac{स}{द} = \frac{द}{क}$ इत्यादि, तो अ, ब, स, द आदि राशियां तब वितत समानुपात में कहलाती हैं।

5

आकार और स्वरूप

राधानाथ सिकदर भारतीय सर्वेक्षण विभाग में एक सर्वेक्षक के पद पर कार्यरत थे। रोजाना अपनी नौकरी बजाने वह अपने दार्जिलिंग स्थित कार्यालय में हाजिर हो जाते। एक दिन उन्होंने सबसे ऊंची दिखने वाली पहाड़ की चोटी की ऊंचाई मापने की ठानी। वह चोटी पी के-15 के नाम से जानी जाती थी। जिस स्थान को उन्होंने अपने मापन-प्रेक्षण का आधार स्थल बनाया था उसकी ऊंचाई वह पहले ही नियत कर चुके थे। उस जगह से प्रेक्षण लेने के बाद उन्होंने अपनी गणनाएं कीं। परिणाम आने पर वह उछल पड़े। उन्हें स्वयं अपने आप पर यकीन नहीं हुआ। समुद्र तल से उस चोटी की ऊंचाई 29,002 फुट (8700.6 मी) निकली थी। यह संसार की सबसे ऊंची चोटी थी जिसका नाम बाद में माउंट एवरेस्ट पड़ा। सिकदर पहले व्यक्ति थे जिन पर यह रहस्योद्‌घाटन हुआ था। लेकिन बिना चोटी पर चढ़े उसकी ऊंचाई मापने में वह कैसे सफल हुए? कोई जादुई डंडा नहीं था उनके पास। अपने ज्यामितीय ज्ञान का इस्तेमाल करके ही अपने मकसद में उन्हें कामयाबी मिली थी। आइए, देखें कि ज्यामिति ऐसी समस्याओं का हल ढूंढ़ने में हमारी कैसे मदद करती है।

'जियोमेट्री' या ज्यामिति का शाब्दिक अर्थ है 'भूमापन' (*जियो* माने भूमि, *मेट्री* माने मापन)। प्रकृति में पाई जाने वाली विभिन्न आकृतियों के अध्ययन से ही शुरू में ज्यामिति की नींव पड़ी। प्रकृति की चंद खूबसूरत रचनाओं को ध्यान से देखिए (चित्र 23)।

इनमें से प्रत्येक की अपनी एक भिन्न ज्यामितीय आकृति है जैसे कि केले का पत्ता समांतर रेखाओं और कोणों के मेल से बना है, मधुमक्खी के छत्ते में षट्‌कोण आकृतियां हैं जबकि क्वार्ट्ज के क्रिस्टल में षट्‌भुजी ठोस आकृतियों का समावेश है। इनमें से हर आकृति अपने ही हिस्सों की एक खास व्यवस्था की सूचक है। इनमें से हर वस्तु का अपना एक अलग पैटर्न है। मजे की बात यह है कि हम ऐसे पैटर्नों को पहचान सकते हैं, उन्हें जहन में रख सकते हैं, उनके बीच के फर्क को समझ सकते हैं तथा इसी तरह के पैटर्न दोबारा कहीं और दिखाई पड़ने पर हम झट उनकी दोबारा पहचान भी कर सकते हैं।
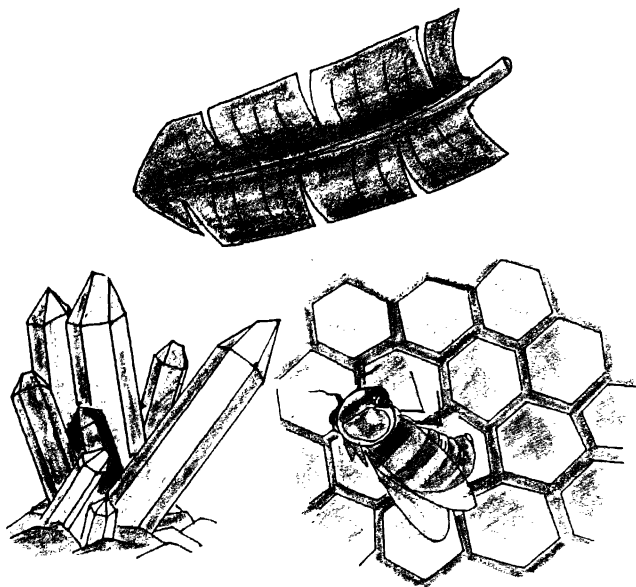
चित्र 23

मानव और प्रकृति के साहचर्य से ही ज्यामिति का विकास आरंभ हुआ। रात्रिकालीन आकाश में चमकते सितारों ने बिंदु तथा वृक्ष की शाखाओं और समूह की रचना करते तारों ने कोण की धारणा को जन्म दिया। पेड़ों की पत्तियों के बीच के खाली स्थानों से छन कर निकलती तथा धूल और धुएं द्वारा प्रदर्शित होती प्रकाश की किरणों ने सरल रेखा जबकि पत्तियों की आकृतियों ने वक्र रेखा की कल्पना को जन्म दिया।

ज्यामिति की मूल आकृतियों – बिंदु, सरल रेखा, कोण, वृत्त संबंधी धारणाएं पत्तियों और पंखुड़ियों आदि के पैटर्नों को देख-देख कर ही उपजी होंगी (चित्र 24)। अन्य आकृतियों जैसे कि त्रिभुज, चतुर्भुज, षट्भुज (छह भुजायुक्त) आदि की रचना इन्हीं मूल आकृतियों द्वारा ही संभव हुई। संस्कृत नामकरण जैसे कि त्रिकोण (तीन कोणयुक्त), चतुष्कोण (चार कोणयुक्त), पंचकोण (पांच कोणयुक्त) भी इसी तथ्य की ही पुष्टि करते हैं।

ज्यामिति : एक उपयोगी साधन

ज्यामिति की शुरुआत सुदूर अतीत यानी प्रागैतिहासिक काल के साथ जुड़ी है। जब
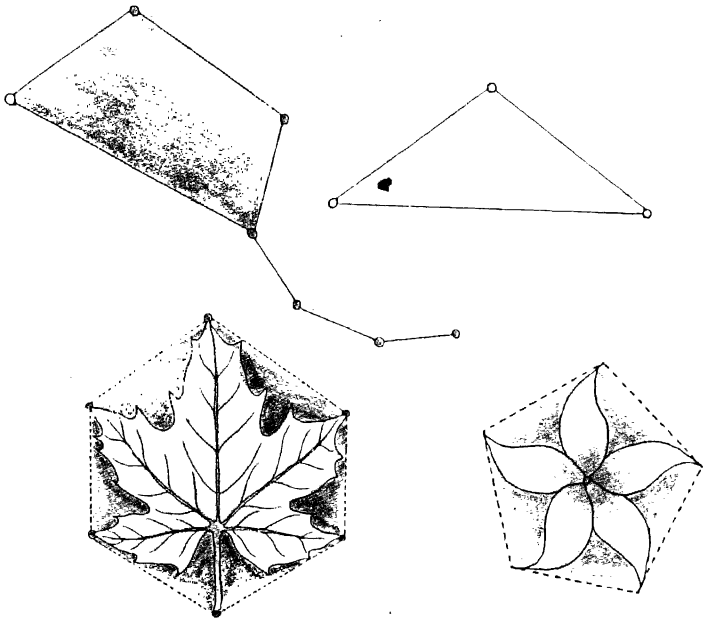
चित्र 24

किसी विशेष जगह की आबादी बढ़ने लगी तो रहने के लिए स्थान छोटे पड़ने लगे। इसलिए ऐसे बसेरों का निर्माण जरूरी हो गया जो इतने बड़े हों कि उनमें परिवार के लोग समा सकें तथा सूर्य की गर्मी, आंधी, वर्षा, तूफान आदि से उनकी रक्षा भी हो सके। सही आकार के बसेरों के निर्माण के लिए लंबाइयों की तुलना करनी पड़ती थी तथा उनकी ऊंचाइयां लंबे से लंबे व्यक्ति से भी ज्यादा रखनी पड़ती थीं।

प्राचीन बेबीलोनवासी गणित की इस शाखा के प्रवर्त्तक थे। टिगरिस और यूफ्रेटस नदियों के बीच की भूमि जहां बेबीलोनवासियों की रिहायश थी, शुरू में एक दलदल के रूप में थी। इस दलदली जमीन को साफ करने तथा नदियों के अत्यधिक बहाव को बांधने के लिए नहरों का निर्माण किया गया। इस कार्य में भूमि का सर्वेक्षण आवश्यक था। इसके लिए बेबीलोनवासियों ने क्षेत्रफल ज्ञात करने वाले नियमों की स्थापना की। ये नियम इतने सटीक या शुद्ध नहीं थे, फिर भी उनसे प्राप्त परिणाम

नहर निर्माण कार्य के लिए काफी थे।

मिस्र में नील नदी के किनारे किसानों के खेत थे जिन पर उनकी मपाई के अनुसार कर चुकाना पड़ता था। बरसात के मौसम में नदी में बाढ़ आ जाने से किनारों तक पानी भर जाता था जिस वजह से जमीन डूब जाती और एक खेत के टुकड़े को दूसरे टुकड़े से विभक्त करने वाले सभी निशान मिट जाते थे। इसलिए पानी पट जाने पर जमीनों का पुनः माप जरूरी हो जाता ताकि हर किसान को उसके जायज हक वाला जमीन का टुकड़ा दोबारा मिल पाए (चित्र 25)। इसके लिए प्रशिक्षित व्यक्ति या रज्जुकारों की मदद ली जाती जो नए सिरे से निशान लगाते थे। माप-जोख के काम के लिए वे ऐसी रस्सियों का इस्तेमाल करते जिनके बीच-बीच में एक-समान दूरियों पर गांठें पड़ी होती थीं जिनसे वे इच्छित दूरियों का माप कर पाते थे और जमीन के टुकड़े को त्रिभुज, चतुर्भुज और समलंबान आदि आकृतियों में विभाजित कर पाते थे। इन आकृतियों का क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिए उन्होंने व्यावहारिक नियमों का विकास किया था जो शुद्ध न होकर बस कामचलाऊ ही थे।
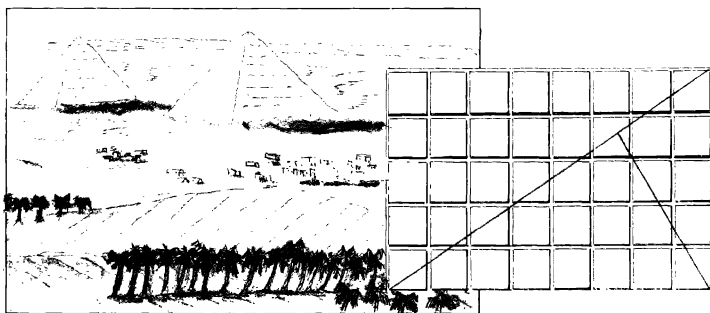
चित्र 25

संसार में सभ्यताओं के विकास से कदम मिलाते हुए गणितज्ञों ने विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों के गुणधर्मों के बारे में पता लगाया। अपने आप में बड़ी ही रोचक बात यह है कि प्राचीन बेबीलोन (अब ईराक), मिस्र, भारत तथा चीन देशों की सभ्यताएं इतनी आपसी दूरियों के बावजूद लगभग एक जैसी ही ज्यामिति का विकास करने में समर्थ रहीं। इन देशों के निवासी बड़े कुशल भवन निर्माता थे और उन्होंने समकोण त्रिभुज के गुणों का इस्तेमाल लंबवत् रेखाओं, वर्गों एवं अन्यान्य आकृतियों के आरेखण के लिए किया। मसलन प्राचीन बेबीलोन तथा मिस्र देश के निवासियों को यह ज्ञात था कि अगर एक ऐसे त्रिभुज की रचना की जाए जिसकी भुजाएं क्रमशः 3, 4 तथा

5 इकाइयां लंबी हों तो उसकी दो छोटी भुजाओं के बीच का कोण समकोण (90°) होगा। मिस्र देश के निवासी एक-समान दूरियों पर गांठें पड़ी हुई एक रस्सी को लेते जो उनके लिए मपाई के पैमाने का काम करती थी और फिर उनके लिए उसकी मदद से 3, 4, 5 इकाइयों वाले त्रिभुज की रचना कर एक समकोण प्राप्त करना बाएं हाथ का खेल होता था (चित्र 26 अ)। ऐसे सरल साधनों का प्रयोग कर वे निपुणता से बड़े ही आश्चर्यजनक पिरामिडों तथा महलों का निर्माण करते थे। हालांकि अब हम जानते हैं कि किसी भी त्रिभुज का क्षेत्रफल उसकी ऊंचाई तथा आधार के गुणनफल
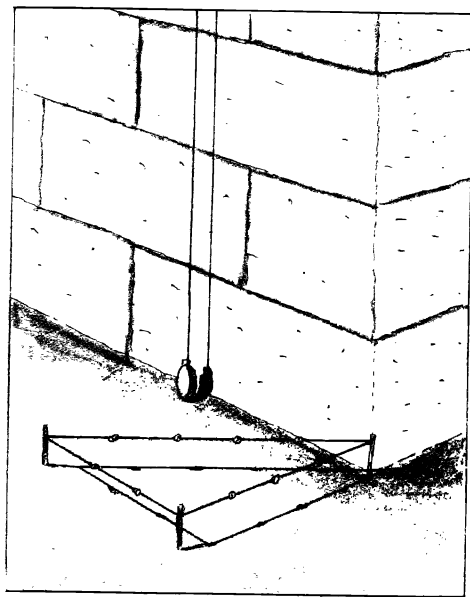
चित्र 26 अ

का आधा होता है, पर मिस्रवासी गलती से इस क्षेत्रफल को आधार तथा एक भुजा के गुणनफल के आधे के बराबर लेते थे। पर चूंकि उनके सर्वेक्षण कार्य में प्रयुक्त होने वाले अधिकतर त्रिभुज ही लंबे तथा कम ऊंचाई वाले होते थे, ऐसे त्रिभुजों में उंचाई तथा भुजा के बीच लंबाइयों का अंतर इतना अधिक नहीं होता था। भूमि आबंटन तथा कर आदि लगाने की दृष्टि से उनकी गणनाओं के परिणाम काफी हद तक शुद्ध मान देने में सक्षम थे। मिस्र में 2500 ईसा पूर्व में निर्मित 'ग्रेट पिरामिड'

का आधार एक पूर्ण वर्ग है जिसकी प्रत्येक भुजा लगभग 230 मी. लंबी है (चित्र 26 ब)। ऐसे विशाल वर्ग की भुजाओं और कोणों का इतनी शुद्धता से आरेखण कर पाना अपने आप में सचमुच एक हैरतअंगेज काम ही था।

हिंदुओं के योगदान से ज्यामिति ने एक सर्वथा नई विकास की राह पकड़ी। दैनिक जीवन के कार्यों तथा खगोलविज्ञान की व्यावहारिक समस्याओं को हल करने के लिए एक साधन के रूप में ही उन्होंने ज्यामिति का विकास किया। क्षेत्रफल, आयतन आदि की मपाई संबंधी ज्यामितीय समस्याओं में संख्याओं और बीजगणित का उन्होंने खुल कर प्रयोग किया। सूत्रों यानी श्लोकों को जबानी याद रखने की परम्परा के कारण लिखित पुस्तकें भारत में काफी देर से आईं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि *शुल्वसूत्र* नामक ज्यामिति की पहली पुस्तकें भारत में 800 ईसा पूर्व के
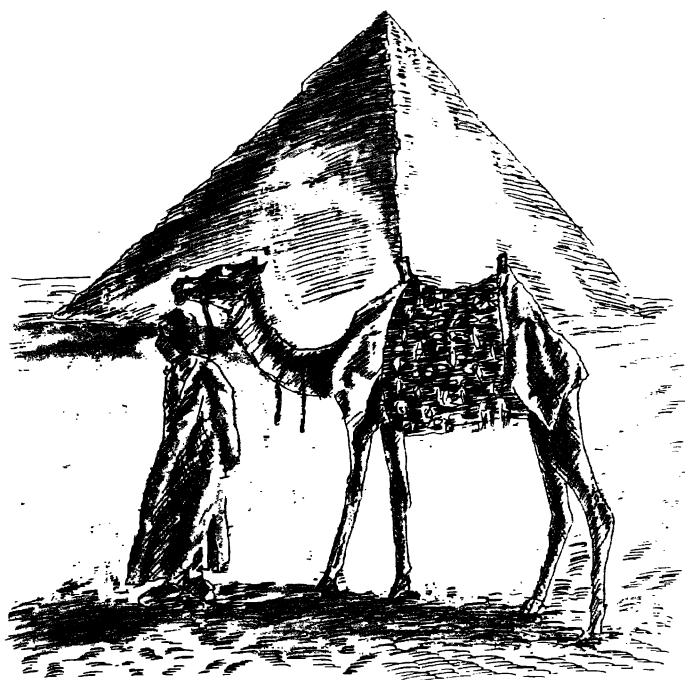
चित्र 26 ब

आसपास आई। यह यूनानियों द्वारा ज्यामिति के ज्ञानार्जन की शुरुआत से कहीं पहले की बात है।

पाइथागोरस के प्रमेय को भारत में *बौद्धायन सिद्धांत* (बौद्धायन का प्रमेय) के रूप में जाना जाता था। यह पाइथागोरस से काफी पहले की बात है। बौद्धायन एक हिंदू गणितज्ञ थे जिन्होंने बलि चढ़ाने की धार्मिक रीतियों के पालन के लिए वेदियों की स्थापना और उनके निर्माण कार्य में लगने वाली ज्यामिति का वर्णन किया था। प्राचीन भारत में बलि चढ़ाने को धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता था। विविध बलि कार्यों के लिए भिन्न आकृतियों वाली बलिवेदियों के निर्माण की व्यवस्था थी जिनके मानदंड पूर्वनिर्धारित रहते थे।
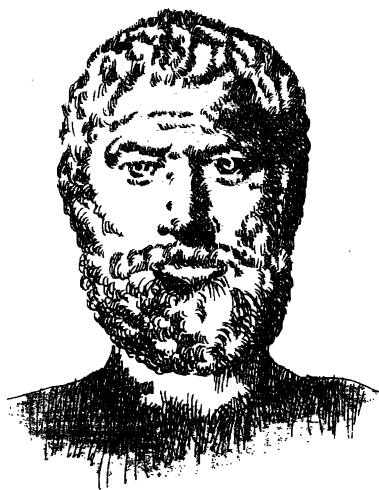
चित्र 27

प्राचीन सभ्यताओं के मनुष्यों ने सूर्य, चंद्र एवं सितारों की गति के क्रम को पहचान लिया था। समय मापन और पंचांग निर्माण में उन्होंने इसका इस्तेमाल शुरू किया। खगोलविज्ञान विषयक ज्ञान द्वारा उन्हें मालूम था कि हर तारामंडल को क्षितिज पर पूर्व दिशा में पुनः उदित होने के लिए करीब 360 दिनों का समय लगता था। अतः उसके द्वारा तय किए गए पूरे वृत्ताकार पथ को 360 भागों में बांटा गया और हर भाग को एक अंश की संज्ञा दी गई। इस तरह कोण मापन अस्तित्व में आया। हर अंग को और भी छोटे 60 हिस्सो में विभाजित किया गया जिन्हें मिनटों की संज्ञा दी गई तथा हर मिनट को दोबारा फिर 60 और छोटे हिस्सों में बांटा गया जो सैकिंड कहलाए। दरअसल 60 का मापक्रम बेबीलोनवासियों की ही देन थी जिन्होंने संख्या 60 पर आधारित अंक पद्धति का विकास किया था।

तारामंडलों की स्थितियों की जानकारी को लोग अपने दैनिक क्रियाकलापों, सामाजिक समारोहों तथा धार्मिक रीति-रिवाजों को सुव्यवस्थित करने के कार्यों में लगाते थे। किसी भी जगह के दिशा निर्धारण में भी इससे मदद मिलती थी। उदाहरण के लिए शुल्वसूत्र, हमें यह बताता है कि जब चित्रा और स्वाति नक्षत्रमंडल

क्षितिज से ऊपर 1 युग (169.4 से.मी.) की दूरी पर होते हैं उस समय इन नक्षत्रमंडलों के ठीक बीचों-बीच पूर्व दिशा का सही-सही निर्धारण किया जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इससे ज्यामिति के अध्ययन को एक महत्वपूर्ण नई दिशा प्राप्त हुई।

एक विधा के रूप में ज्यामिति

यूनान निवासी आदिम मिस्री सर्वेक्षकों को 'ज्यामितिकार' या 'भूमापक' (यूनानी भाषा में *जी* का अर्थ 'भूमि' तथा *मेटिरिया* का मतलब है 'मापन') का नाम देते थे। इन ज्यामितिज्ञों ने त्रिभुजों, वर्गों, आयतों और यहां तक कि वृत्तों के बारे में ढेर सारे तथ्य प्राप्त किए। इन समस्त तथ्यों ने मिलकर फिर ज्ञान की एक नई विधा को जन्म दिया जिसका नामकरण यूनानियों के हाथों 'ज्यामिति' या 'भूमि मापन संबंधी अध्ययन' के रूप में हुआ। ज्यामिति के क्षेत्र में उन्होंने महत्वपूर्ण प्रगति की। न केवल मिस्रियों द्वारा स्थापित अनेक दोषपूर्ण नियमों में उन्होंने संशोधन किए, अपितु विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों का उनके बीच के सह-संबंधों को निकालने के लिए उन्होंने अध्ययन भी किया। यूनानी गणितज्ञ थेल्स (चित्र 27), जो 2,500 वर्ष पूर्व हुए थे, ने पता लगाया कि वृत्त के व्यास को चाहे किसी भी रूप में खींचा जाए रेखा वृत्त को हमेशा समद्विभाजित करती है यानी उसे दो बराबर आधे हिस्सों में बांटती है। उसने इस बात पर भी गौर किया कि दो सरल रेखाएं जब एक-दूसरे को काटती हैं तो आमने-सामने के कोण हमेशा बराबर होते हैं। इनसे यूनानियों को भूमापन के अध्ययन से अलग हट कर ज्यामिति को आकृतियों के विभिन्न भागों के परस्पर संबंधों के अध्ययन के रूप में स्थापित करने में बड़ी मदद मिली। थेल्स के बाद पाइथागोरस सरीखे यूनानी गणितज्ञों ने ज्यामितीय आकृतियों संबंधी काफी तथ्यों को खोजकर उन्हें सिद्ध भी करके दिखाया।

चित्र 28

ईसा पूर्व चौथी सदी तक ज्यामितीय आकृतियों

संबंधी ढेर सारी बातों के बारे में जानकारी हाथ लग गई थी जैसे कि त्रिभुज और वृत्त संबंधी कई प्रमेय आदि, लेकिन यह सब सिलसिलेवार रूप में नहीं था। विद्वान यूनानी गणितज्ञ यूक्लिड (चित्र 28) जो 300 ईसा पूर्व के आसपास सिकंदरिया (एलेक्ज़ेंड्रिया, मिस्र) के संग्रहालय में गणित पढ़ाते थे, पहले गणितज्ञ थे, जिन्होंने अपने ग्रंथ 'ज्यामिति के मूलतत्व (एलिमेंट्स)' में एक तार्किक आधार पर ज्यामिति के विकास को प्रस्तुत किया। विभिन्न शब्दावलियों, परिभाषाओं तथा अभिगृहितों का प्रयोग उन्होंने ज्यामितीय आकृतियों संबंधी प्रमेयों को सिद्ध करने के लिए किया। इसके अलावा उन्होंने हल ढूंढ़ने की एक ऐसी विधि भी दी जिसने बाद में गणित की अन्य शाखाओं के विकास में भी एक आधारस्तंभ की तरह कार्य किया। आज भी वह विधि सर्वमान्य है।

सर्वांगसमता एवं समानता

ज्यामिति के सभी सिद्धांतों में सर्वांगसमता और समानता के सिद्धांत ही सबसे महत्वपूर्ण हैं। हमारे सभी क्रियाकलापों का वे आधार हैं। आइए, देखें यह कैसे होता है।

सर्वांगसमता

एक कागज लें और उसे बीच से मोड़ दें। अब मुड़े हुए हिस्से को हाथ से दबा कर कागज से कोई भी आकृति काट लें। आपको दो आकृतियां प्राप्त होती हैं जो एक-दूसरे के ऊपर रखने पर आपस में पूरी तरह से मेल खाती हैं। दो समतल आकृतियों को तब सर्वांगसम कहा जाता है जब एक दूसरे के ऊपर रखने पर वे एक-दूसरे को पूरी तरह से ढंक लेती हैं (चित्र 29)। ताश की गड्ढी का उदाहरण लें। ताश के सभी पत्ते सर्वांगसम हैं क्योंकि वे एक के ऊपर एकदम ठीक बैठ जाते हैं। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि किन्हीं दो आकृतियों की सर्वांगसमता ज्ञात करने
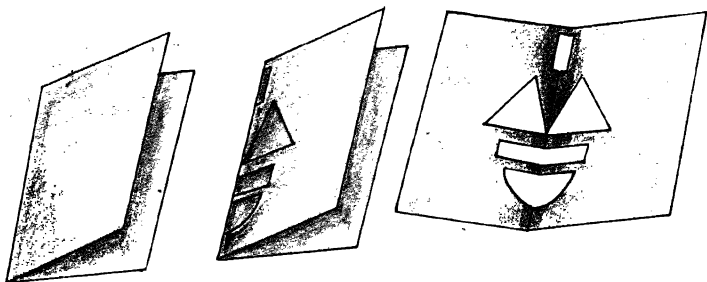
चित्र 29

के लिए उन्हें एक दूसरे के ऊपर ही रखा जाए। दोनों आकृतियों के तत्वों के बीच एकैकी संगति स्थापित करके और फिर उनके संगत तत्वों के मापन द्वारा भी सर्वांगसमता सिद्ध की जा सकती है। अगर संगत भुजाओं एवं संगत कोणों के माप बराबर हैं तो ऐसी अवस्था में दोनों त्रिभुजों को सर्वांगसम करार दिया जाता है। अतः दो त्रिभुजों को तब सर्वांगसम कहा जाता है जब उनके शीर्षों की दी गई संगति के लिए उनकी संगत भुजाएं और संगत कोण सर्वांगसम होते हैं। भुजाओं और कोणों की सर्वांसमता इन परिभाषाओं द्वारा सिद्ध की जाती है कि रेखाखंड तब सर्वांगसम होंगे जब उनकी लंबाई बराबर होगी तथा कोण तब सर्वांगसम होंगे जब दोनों एक समान माप के होंगे।

यह एक रोचक तथ्य है कि दो त्रिभुजों की सर्वांगसमता सिद्ध करने के लिए छह की जगह त्रिभुजों के बस तीन विशिष्ट संगत तत्वों की सर्वांगसमता स्थापित करना ही काफी है। लेकिन इसके लिए दो शर्तें या प्रतिबंध भी हैं। एक तो यह कि तीनों तत्वों में कम-से-कम एक भुजा जरूर समाविष्ट होनी चाहिए और दूसरे अगर उन तत्वों में केवल एक ही कोण हो तो वह दो भुजाओं के बीच वाला कोण होना चाहिए। किसी चतुर्भुज के लिए संगत तत्वों के लिए पांच $(2 \times 4 - 3)$ शर्तों तथा पंचभुज के लिए सात $(2 \times 5 - 3)$ शर्तों का पालन होना जरूरी है। व्यापक रूप से, n भुजाओं वाले किसी भी बहुभुज के लिए कुल प्रतिबंधों की संख्या $2n - 3$ होगी। दो वृत्त तब सर्वांगसम कहे जाएंगे जब उनके अर्धव्यास बराबर होंगे। उसी तरह बराबर भुजाओं वाले वर्ग सर्वांगसम होंगे।

आप प्रश्न कर सकते हैं कि 'क्या सर्वांगसमता की वास्तविक जीवन में कोई सार्थकता है?' इसका दमदार उत्तर है 'हां'। दरअसल हमारा जीवन वस्तुओं की सर्वांगसमता के बारे में हमारे ठोस हालांकि अंतःप्रज्ञा प्रेरित विश्वास पर ही टिका हुआ है। हमारे रोजमर्रा के इस्तेमाल की सभी चीजें – कार, रेडियो, दूरदर्शन सेट, घड़ियां, खिलौनों आदि का निर्माण सर्वांगसमता पर ही निर्भर करता है। मसलन किसी घड़ी के निर्माण में पहले उसके विभिन्न हिस्सों के 'डाई' बनते हैं। डाई द्वारा बना कोई भी हिस्सा उसी किस्म के दूसरे हिस्सों से हर मायने में हूबहू मेल खाता है। किसी मशीन के एक पुर्जे या हिस्से को दूसरे पुर्जे या हिस्से से बदला जा सकता है क्योंकि हम जानते हैं कि दोनों हिस्से या पुर्जे एक जैसे ही यानी सर्वांगसम हैं। किसी पुस्तक के पन्ने सर्वांगसम होते हैं। अतः उन्हें इकट्ठा कर पुस्तक पर आसानी से जिल्द चढ़ाई जा सकती है। अगर हम लंबाई मापना चाहते हैं तो हम किसी भी पैमाने का जो उपलब्ध हो प्रयोग कर सकते हैं क्योंकि हमें मालूम है कि सभी पैमाने एक दूसरे के सर्वांगसम बनाए जाते हैं।

समानता

दी गई आकृतियों को देखिए (चित्र 30)। इनमें दिखाए गए त्रिभुज समबाहु हैं,

चतुर्भुज वर्ग हैं तथा षट्भुज सम (रेगुलर) हैं। इनके तत्संबंधी कोण सर्वांगसम हैं। भुजाएं भी समांतर हैं हालांकि सर्वांगसम नहीं। ये सभी आकृतियां एक जैसी ही दिखती हैं। इन्हें समान आकृतियों की संज्ञा दी जाती है। आकृतियों की समानता
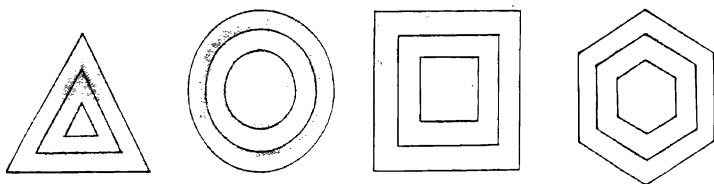
चित्र 30

के लिए पहली जरूरी शर्त है कि तत्संबंधी कोण सर्वांगसम हों तथा दूसरी यह कि तत्संबंधी भुजाओं की लंबाई का अनुपात एक समान हो। सभी वृत्त यकीनन समान ही हैं।

चित्र 31 में दर्शाए रूपचित्रों को देखिए। भिन्न आकार के दोनों चित्र एक ही

चित्र 31

स्त्री के हैं। दोनों ही चित्रों में एक चित्र के सभी बिंदु दूसरे चित्र के बिंदुओं के संगत हैं लेकिन एक चित्र के दो बिंदुओं के बीच की दूरी, दूसरे चित्र के उनके ही संगत बिंदुओं के बीच की दूरी के बराबर नहीं है। छोटे आकार-स्वरूप के चित्र में इस दूरी को उसी अनुपात में ही सोपानन द्वारा कम कर दिया गया है। दूसरे शब्दों में ये दोनों समान आकृतियां हैं।

ऐसी समान आकृतियां प्रकृति में बहुतायत में देखने को मिलती हैं। इसका सबसे अच्छा दृष्टांत तो प्रकृति में पाए जाने वाले क्रिस्टलों द्वारा मिलता है। किसी भी क्रिस्टलीय पदार्थ के सभी क्रि टल स्वरूप में एक जैसे ही होते हैं, हालांकि उनके आकार में भिन्नता होती है। जब कोई किस्टल छोटे-छोटे किस्टलों में टूटता है तो वे सभी टुकड़े एक समान ही होते हैं। भिन्न आकार के साबुन के बुलबुले, एक ही प्रकार के छोटे और बड़े पुष्प, मधुमक्खी के छत्तों के षट्कोणीय खाने, तितलियों के पंखों के खूबसूरत डिजाइन आदि प्रकृति में पाए जाने वाले समान आकृतियों के सामान्य दृष्टांत हैं।

साबुन के बुलबुले हमेशा गोलाकार आकृति के क्यों होते हैं? पानी की बूंदें हमेशा गोलाकार क्यों होती हैं? ज्यामिति से क्या इसका कोई सरोकार है? हां, यकीनन। प्रकृति न्यूनतम पृष्ठ क्षेत्रफल को ही हर अवस्था में ग्रहण करना चाहती है ताकि न्यूनतम पृष्ठ ऊर्जा की अवस्था प्राप्त हो सके। गोला एक ऐसी ठोस आकृति का द्योतक है जिसका पृष्ठ क्षेत्रफल उसी आयतन की ही किसी और ठोस आकृति की अपेक्षा सबसे कम होता है। अतः साबुन के बुलबुले या जल की बूंदें हमेशा गोलाकार आकृति को ही प्राप्त होती हैं। इसी वजह के चलते ग्रह भी गोलाकार होते हैं।

सममिति

जीवन में क्या सममिति की कोई उपयोगिता है? वस्तुतः इसी प्रश्न को घुमाकर यूं पूछा जाना चाहिए, 'क्या सममिति के बिना जीवन संभव है?' आइए, इस प्रश्न का उत्तर थोड़े विस्तार से देने की कोशिश करें।

चित्र 32 पर गौर करें। वह किसी शाखा पर लगी पत्तियों या फूल की पंखुड़ियों की विविध व्यवस्थाओं को दर्शाता है। विभिन्न आकृतियों जैसे कि त्रिभुज, वर्ग, पंचभुज, षट्भुज या वृत्त आदि से हम भली-भांति परिचित हैं। प्रकृति ने ही असल में इन सभी आकृतियों को मानव को सुझाया है। व्यवस्था की दृष्टि से इन सभी आकृतियों में एक तरह से संपूर्ण सममिति ही दृष्टिगोचर होती है। किसी भी आकृति के हिस्सों की किसी रेखा या बिंदु के संदर्भ में सर्वांगसमता को ही सममिति का नाम दिया जाता है।

चित्र 32 अ पर गौर करें। यह आकृति पत्ते के केंद्रबिंदु तथा उसके शीर्ष से होकर गुजरने वाली ऊर्ध्वाधर रेखा के सापेक्ष सममितीय है। आकृति को 120 अंश से घुमा देने पर भी यह अपरिवर्तित रहती है। अतः आकृति में अक्षीय एवं घूर्णीय दोनों ही तरह की सममितियां मौजूद हैं। 32 इ और 32 फ को छोड़ कर चित्र में दिखाई गई सभी आकृतियों में अक्षीय और घूर्णीय सममितियां मौजूद हैं। पत्ते केवल अक्षीय सममिति का ही गुण रखते हैं।
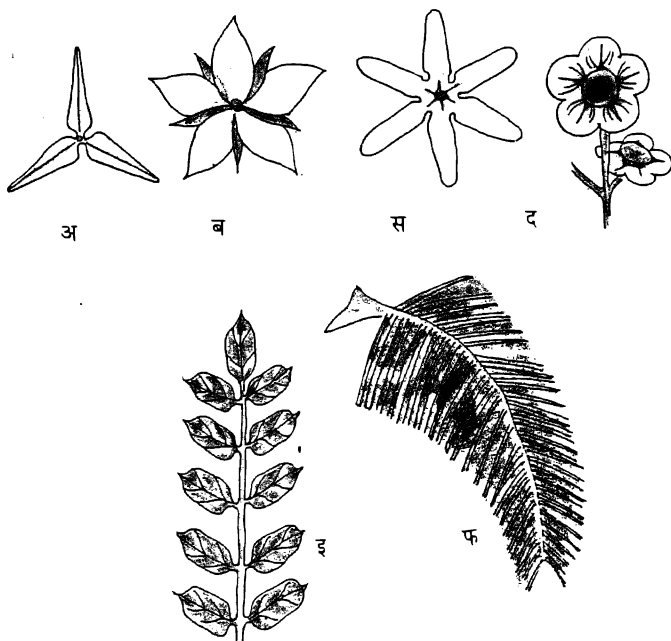
चित्र 32

प्रकृति की कई अन्य वस्तुओं में भी सममिति देखने को मिलती है। साधारण नमक के क्रिस्टल को लें। वे घनाकार हैं (चित्र 33 अ)। घन एक ऐसी वस्तु का द्योतक है जिसमें बहुअक्षीय सममिति मौजूद होती है। विषमलंबक्ष गंधक का क्रिस्टल सममितीय क्रिस्टल का एक अन्य दृष्टांत है (चित्र 33 ब)।

चतुष्फलक एक अन्य सममितीय आकृति है जो प्रकृति में बहुतायत में देखने

को मिलती है। नगों में बेशकीमती हीरा कार्बन परमाणुओं द्वारा रचित चतुष्फलकों के जालक द्वारा बना है। क्रिस्टलों के चतुष्फलकीय जालक का एक अन्य उदाहरण क्वार्ट्ज है।

प्रकृति को प्रिय एक अन्य सममितीय आकृति है षट्भुज। जहां एक ओर कार्बन परमाणुओं का चतुष्फलकीय जालक हीरे को पदार्थों में कठोरतम स्वरूप प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर एक तल में अवस्थित कार्बन परमाणुओं की षट्भुजीय व्यवस्था ग्रेफाइट की मणियों को चिकनापन प्रदान करती है और उसे गुरु-कार्य (हेवी ड्यूटी) मशीनों के लिए एक *आदर्श स्नेहक* बनाती है। शहद के छत्तों के खानों का षट्भुजीय आकार उसे सर्वोत्तम समष्टि-पूरक (स्पेस फिलिंग) आकृति बनाता है (चित्र 33 इ)

संभवतया प्रकृति को सर्वाधिक प्यारी अहम् सर्पिल आकृति या 'हेलिक्स' नुमा ज्यामितीय आकृति है हालांकि यह पूरी तरह से सममितीय नहीं है। हेलिक्स एक ऐसा वक्र है जो स्वयं को एक बेलन पर लपेटती जाती है। पेंच हेलिक्स का एक आम उदाहरण है। किसी वृक्ष पर चढ़ती लता या स्प्रिंग के रूप में लिपटते प्रतान (टेंड्रिल) को भी प्रकृति में हेलिक्स के दृष्टांत के रूप में देखा जा सकता है (चित्र 33 ज)। किसी भी कोशिका के केंद्रक में स्थित डी. एन. ए. का अणु, जो नंगी आंख से दिखाई नहीं पड़ता, भी दोहरी सर्पिलाकृति द्वारा निर्मित है। इस दोहरी सर्पिलाकृति की हर भुजा न्यूक्लियोटाइडों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा निर्मित होती है जिसमें एक शर्करा का अणु, एक फास्फेट व एक नाइट्रोजन के आधारवाला अणु मौजूद होता है।

घरों-मकानों में ज्यमिति

कहने को कहा जा सकता है कि हमारा जीवन आयतों और वृत्तों पर ही निर्भर है। पुस्तकों, मेजों, अलमारियों, दीवारों, फर्श और छतों, सिक्कों और प्यालों तथा तश्तरियों और न जाने किस-किस की आप कल्पना करेंगे। किसी बढ़ई को आप बुलाइये तो वह अपने सेट स्क्वेयर और पैमाने के साथ हाजिर हो जाएगा। किसी राजगीर को बुलाओ तो स्प्रिट लेविल और साहुल सूत्र (प्लंब लाइन) के साथ आपके पास आ जाएगा। सेट स्क्वेयर और साहुल सूत्रों की इन्हें आखिर क्यों जरूरत पड़ती है? इसका कारण एकदम सरल-सा है। पृथ्वी का गुरुत्व एवं पृथ्वी की गोलाकृति क्षैतिज एवं ऊर्ध्व केवल इन दो दिशाओं के बारे में ही विचार करने के लिए हमें विवश करती है। पृथ्वी का गुरुत्व बल हर वस्तु को अपने केंद्र की तरफ, अर्धव्यास की दिशा में खींचता है। धरती के पृष्ठतल के किसी बिंदु पर खींचा गया स्पर्शतल उस बिंदु से होकर गुजरने वाले अर्धव्यास के साथ एक समकोण बनाता है यानी अर्धव्यास उस बिंदु पर खींचे गए स्पर्शतल पर लम्बवत् होता है। उस तल को क्षैतिज तथा अर्धव्यास दिशांमुखी रेखा को ऊर्ध्वाधर कहते हैं (चित्र 34)। अगर किसी वस्तु को हम जमीन पर रखें तो वह वस्तु तभी स्थिर होगी जबकि जमीन का तल पूरी तरह
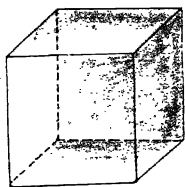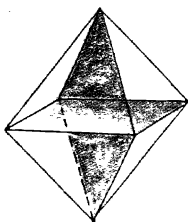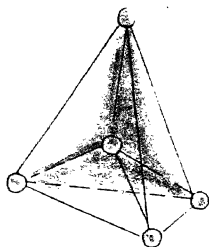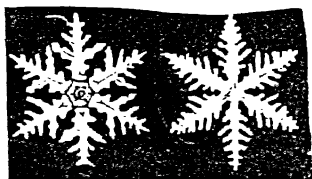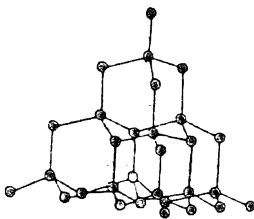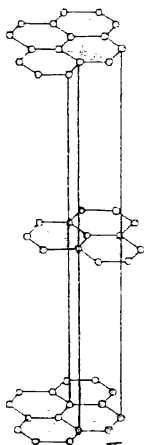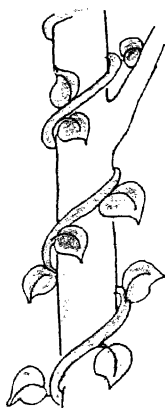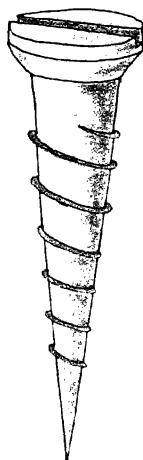
चित्र 33

से क्षैतिज होगा। किसी अक्षैतिज तल पर एक गेंद को रख कर देखें। गेंद ढलान से नीचे लुढ़कने लगती है। ऐसे ढाल पर पानी को डालें। बहता हुआ पानी ढलान से नीचे जाने लगता है। किसी भवन के खंभे और दीवारें अगर सही ढंग से ऊर्ध्वाधर न बनाई जाएं तो उसमें असंतुलन के लक्षण पैदा हो जाएंगे। अतः प्रकृति ही हमें क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर दिशाओं को प्रयोग में लाने के लिए बाध्य करती है।

रचना एवं प्रयोग की दृष्टि से आयत एक सरलतम आकृति है। दिक-भरण के लिए यह बड़ी ही सुविधाजनक आकृति है। किसी बढ़ई का सेट स्क्वेयर स्थाई रूप से बना एक समकोण ही है जो उसे बिना किसी कठिनाई के किसी आयत या वर्ग के कोनों पर सही ढंग से समकोणों की रचना करने में मदद करता है। रेखा के किसी भी बिंदु पर समकोण तथा समांतर रेखाओं की रचना करने में भी यह बढ़ई की मदद करता है (चित्र 35)।

जब बढ़ई किसी अलमारी को बनाने के लिए लकड़ी के फट्टों को लगाता है तो वह यह पहले ही निश्चित कर लेता है कि लम्बवत् दूरियां अ स और ब द एक-समान हैं ताकि फट्टा अ ब फट्टे स द के समांतर आ सके। फट्टों का मसांतर एवं क्षैतिज होना संतुलन बनाए रखने के लिए जरूरी है (चित्र 36)।

राजगीर के स्प्रिट लेविल और साहुल सूत्र इसी उद्देश्य को ही पूरा करते हैं यानी क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर दिशाओं का सही निर्धारण करते हैं। किसी भी द्रव का मुक्त पृष्ठ (फ्री सरफेस) सदा क्षैतिज अवस्था में रहता है। अतः स्प्रिट लेविल में हवा का बबूला इस बात को दर्शाता है कि कोई रेखा या कोई तल क्षैतिज है या नहीं। साहुल सूत्र को जब मुक्त रूप से लटकाया जाता है तो वह हमेशा ऊर्ध्व दिशान्मुख होता है (देखिए चित्र 26 अ)।
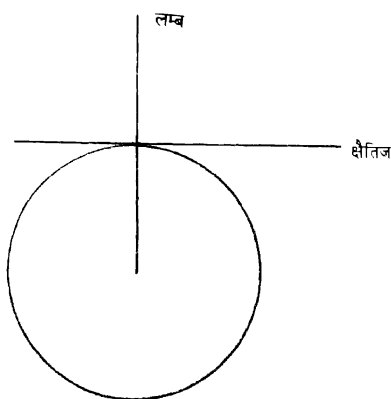
क्षेत्रफलों एवं आयतनों का मापन भी एक रोजमर्रा की ही गतिविधि है जो ज्यामितीय सूत्रों पर ही पूरी तरह से टिकी हुई है। बढ़ई, राजगीर, पेंटर, पत्थर तोड़कर पत्थरों का ढेर या गड्ढा खोद कर मिट्टी का ढेर लगाने वाले मजदूर सभी अपने कार्य या मेहनत का

चित्र 34
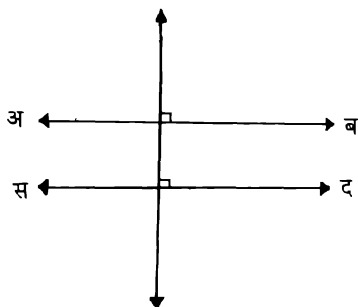
चित्र 35
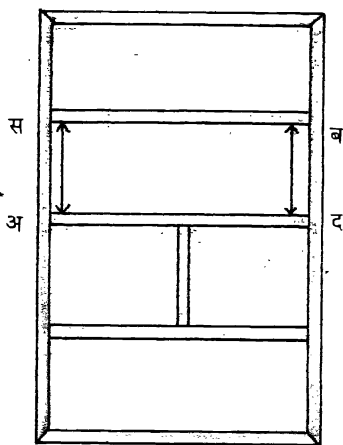
चित्र 36

हिसाब-किताब क्षेत्रफल या आयतन द्वारा ही लगाते हैं।

ज्यामिति हमारी जिज्ञासा को हमारे प्रश्नों का उत्तर देकर शांत कर सकती है। मान लीजिए कि 2 मी. लम्बा एक व्यक्ति जमीन पर खड़ा होता है तो बताना यह है कि क्षितिज उससे कितनी दूरी पर है?

चित्र 37 को देखिए। यह 'स्केल' के अनुसार बनाया गया चित्र नहीं है। पर फिर भी हमारी जरूरत पूरा करने के लिए काफी है। मान लीजिए कि उस व्यक्ति की लंबाई अ ब है। अतः अ ब = 2 मी.। अब ब स को आप धरती का व्यास मान लें। अर्थात ब स = $13{,}400 \times 10^3$ मी.। क्षितिज पर द तथा इ दो बिंदु लें। हमें ब द या द इ की लंबाई मापनी है, जहां अ द और अ इ स्पर्श रेखाएं हैं। वृत्त संबंधी एक प्रमेय के अनुसार :

$(\text{अ द})^2 = (\text{अ ब}) \times (\text{अ स})$

$(\text{अ द})^2 = 2 \times 13{,}400 \times 10^3$

$= 268 \times 10^5$ मी.

$(\text{अ द}) = \sqrt{26.8 + 10^6}$

$= \sqrt{26.8} + 10^3$ मी.

$= 5.176 \times 10^3$ मी.

$= 5.176$ कि.मी.

अब बिंदु द इतनी अधिक दूरी पर स्थित है कि ब द तथा अ द ये दोनों दूरियां लगभग एक-समान ही हैं। अतः ब द = 5.176 कि.मी.। यानी किसी 2 मी. लम्बे व्यक्ति से क्षितिज 5.176 कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

एक आम व्यक्ति की साधारण-सी जिज्ञासा संचार से जुड़ी सैकड़ों लोगों की एक अति महत्वपूर्ण समस्या में बदल जाती है जब किसी दूरदर्शन 'टावर' की ऊंचाई
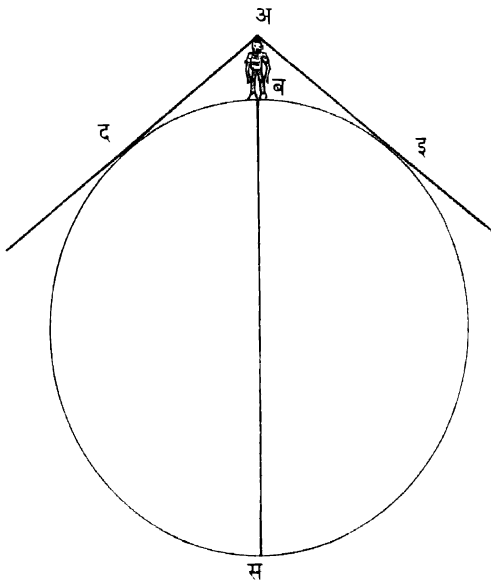
चित्र 37

सुनिश्चित करने का प्रश्न उठता है। दूरदर्शन केंद्र के चारों तरफ के दायरे में एक निश्चित दूरी तक कार्यक्रमों के प्रसारण के लिए दूरदर्शन टावर की ऊंचाई कितनी होनी चाहिए? मिसाल के तौर पर 200 मी. ऊंचे दूरदर्शन टावर से क्षितिज 5.176×10^4 मी. अर्थात् 51.76 कि.मी. की दूरी पर अवस्थित होगा। अतः दूरदर्शन टावर से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम करीब 52 कि.मी. की दूरी तक पहुंच सकेंगे।

6

त्रिकोणमिति

ज्यामिति की एक महत्वपूर्ण प्रशाखा है त्रिकोणमिति या त्रिभुज मापन। त्रिभुजों के कुछ कोण या भुजाएं ज्ञात होने पर शेष कोणों और भुजाओं का मान हम त्रिकोणमिति द्वारा निकाल सकते हैं और इस तरह बहुविध सवालों के हल ढूंढ़ सकते हैं।

नीचे दी गई स्थितियों पर गौर करें :

- बगीचे में एक सुंदर पाम वृक्ष अपने शिखर को शान से आसमान में तान कर खड़ा है। इस वृक्ष की सुंदरता का आनंद उठाते हुए हर दर्शक इसकी ऊंचाई के बारे में सोच कर हैरत में पड़ता है। क्या चोटी तक चढ़े बिना इसकी ऊंचाई मापी जा सकती है?
- एक चौड़ी नदी के तट पर खड़ा एक व्यक्ति बिना उस पार गए नदी की चौड़ाई जानना चाहता है।
- एक दुर्गम क्षेत्र का सर्वेक्षण करते हुए कोई सर्वेक्षक वहीं खड़े-खड़े एक सुदूर वृक्ष, जहां तक उसकी पहुंच नहीं है, की दूरी निर्धारित करना चाहता है।

उक्त सभी स्थितियां एकदम आम हैं और त्रिभुजों के सरल गुणधर्मों के प्रयोग द्वारा इनके समाधान आसानी से निकल सकते हैं। गणित की एक विशेष शाखा का विकास किया गया है जो किसी त्रिभुज की भुजाओं और कोणों के मध्य के संबंधों की विवेचना करती है। इस शाखा को त्रिकोणमिति कहते हैं। आइए, देखें कि उल्लिखित समस्याओं को हल करने में त्रिकोणमिति कैसे हमारी मदद करती है।

एक सरल त्रिभुज अ ब स को लें जिसका एक कोण समकोण है (चित्र 38)। मान लीजिए कि कोण ब $= 90^{o}$, कोण अ $= 30^{o}$ और कोण स $= 60^{o}$। भुजाओं की लंबाइयों को चित्रानुसार अ, ब, स मान लें। अब त्रिभुज के एक जाने-माने गुणधर्म के अनुसार अ $= \frac{ब}{2}$, तथा पाइथागोरस के प्रमेय का इस्तेमाल करने पर $स^2 = ब^2 - अ^2$ यानी $स^2 = ब^2 - \frac{ब^2}{4} = \frac{3}{4} ब^2$ अतएव स $= \frac{\sqrt{3}}{2}$ ब। इस तरह त्रिभुज की तीनों भुजाएं क्रमशः ब, $\frac{ब}{2}$ एवं $\frac{\sqrt{3}}{2}$ ब हैं। अब अगर हम

त्रिभुज अ ब स की तीनों भुजाओं का अनुपात निकालें तो हमें ये मान प्राप्त होते हैं : $\frac{अ}{ब} = \frac{1}{2}, \frac{स}{ब} = \frac{\sqrt{3}}{2}$ और $\frac{स}{अ} = \sqrt{3}$ । हम देखते हैं कि प्रत्येक अनुपात का एक निश्चित मान है। इन अनुपातों को दिए गए कोण के सापेक्ष खास नाम दिए जाते हैं। कोण स जिसका मान 60° है के सापेक्ष अगर हम इन अनुपातों को लें तो इनके मान इस प्रकार बनते हैं : $\frac{अ}{ब}$ को कोण स की कोज्या कहते हैं, $\frac{स}{ब}$ को कोण स की ज्या जबकि अनुपात $\frac{स}{अ}$ को कोण स की स्पर्शज्या कहते हैं। सुविधा की दृष्टि से इन अनुपातों को हम क्रमशः कोज्या, ज्या तथा स्पर्शज्या से निरूपित करते हैं। अतः–
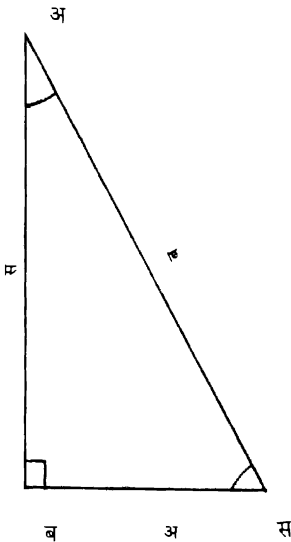
कोज्या $60^{\circ} = \frac{1}{2}$, ज्या $60^{\circ} = \frac{\sqrt{3}}{2}$, स्पर्शज्या $60^{\circ} = \sqrt{3}$

चित्र 38

यहां सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन अनुपातों के मान केवल कोणों पर ही निर्भर करते हैं न कि भुजाओं की लंबाइयों पर। इसीलिए चित्र 39 में कोज्या $60^{\circ} = \frac{1}{2}$ है। इन अनुपातों के मानों को 0° से 90° तक के सभी कोणों के लिए निकाल
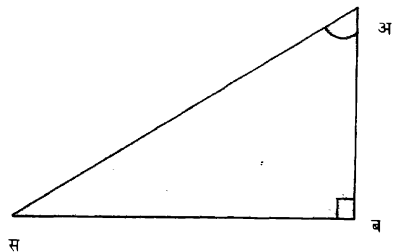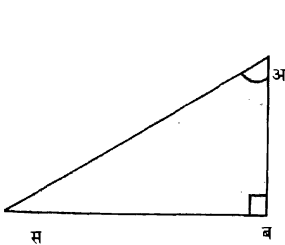
चित्र 39

कर फिर उनकी सारणियां बनाई जाती हैं। ऐसी सारणियों को त्रिकोणमितीय सारणियां कहते हैं। इनकी मदद से किसी भी इच्छित अनुपात का मान हम ज्ञात कर सकते हैं। इन सारणियों से उल्लिखित चित्र के लिए हम निम्न मानों को प्राप्त करते हैं : कोज्या $60^{\circ} = 0.5000$, ज्या $60^{\circ} = 0.8660$, स्पर्शज्या $60^{\circ} = 1.7321$ ।

विशुद्ध मानों वाली त्रिकोणमितीय सारणियों का सृजन एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता था और इसने प्राचीन काल के श्रेष्ठ गणितज्ञों को दिमागी तौर पर उलझाए रखा था। नाइकिया निवासी हिप्पार्कस (150 ईसा पूर्व), जो एक यूनानी गणितज्ञ था, संभवतः पहला व्यक्ति था जिसने इन सारणियों की रचना की। उसने सूर्य और चांद के आकार तथा पृथ्वी से उनकी दूरियां मापने की कोशिश भी की। एक ऐसे गणित की आवश्यकता उसने महसूस की थी जिसके द्वारा पृथ्वी पर लिए गए मापों के आधार पर आकाशीय पिंडों का अनुमापन किया जा सके। त्रिकोणमिति की खोज का श्रेय उसे ही दिया जाता है।

त्रिकोणमिति हमें समस्याओं के समाधान निकालने में कैसे मदद करती है? तो इसका उत्तर है उस विधि के द्वारा जिसे त्रिभुजन कहते हैं तथा जिसमें बहुत से त्रिभुजों के कोण माप कर फिर त्रिकोणमितीय सारणियों का इस्तेमाल किया जाता है। आइए, कथित स्थितियों को सरल रेखाचित्रों द्वारा प्रदर्शित करें।

पहली समस्या के समाधान के लिए मान लीजिए कि पेड़ को हम रेखा अ ब द्वारा दर्शाते हैं (चित्र 40)। दूरी ब स को जमीन के साथ-साथ दिखाया गया है तथा कोण अ ब स $= 90^{\circ}$। मान लें कि ब स $=$ 10 मी.। बिंदु स पर खड़ा एक दर्शक जब पेड़ की चोटी की दिशा में देखता है तो दर्श रेखा उसे जमीन के साथ 60° का कोण बनाती हुई लगती है। अब $\frac{\text{अ ब}}{\text{ब स}} =$ स्पर्शज्या 60° है।

अतः $\frac{\text{अ ब}}{10} = 1.7321$ है।
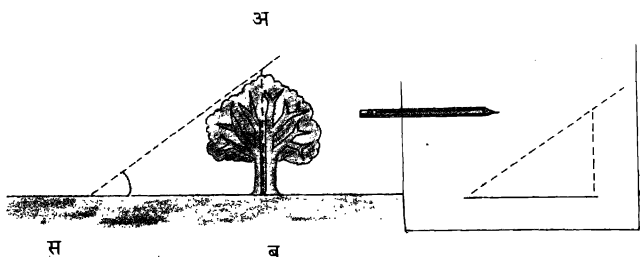
चित्र 40

इस तरह अ ब = 1.7321 × 10 = 17.321 मी.। अर्थात् वृक्ष की ऊंचाई 17.321 मी. है। हम देखते हैं कि त्रिकोणमिति ने सवाल को केवल दो सीधे-सीधे मापों यानी जमीन के साथ की दूरी ब स तथा कोण स के मापन के रूप में ही परिवर्तित कर दिया है।

दूसरे सवाल में कल्पना कीजिए कि दर्शक नदी के इस तरफ वाले किनारे के बिंदु ब पर खड़ा है (चित्र 41)। दूसरे किनारे पर वह बिंदु अ जैसे कि एक पेड़ को लेता है। अब कोण अ ब स को मापने पर उसका मान 72° आता है। दर्शक अब किनारे-किनारे बढ़ते हुए बिंदु स पर पहुंचता है जो नदी पार के किनारे पर स्थित बिंदु अ के ठीक आमने-सामने है। अतः कोण अ स ब = 90°। अब त्रिभुज अ ब स में $\frac{\text{अ स}}{\text{ब स}}$ = स्पर्शज्या 72°;
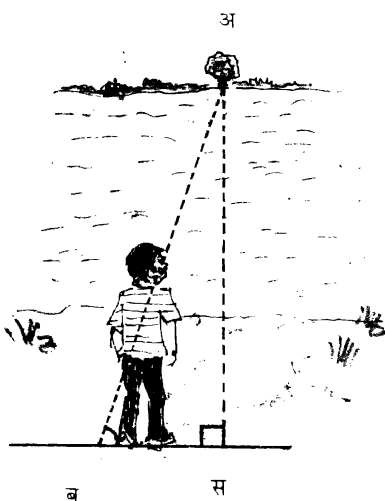
चित्र 41

अ स = 30 स्पर्शज्या 72°, = 30 × 3.077 = 92.310। अतः नदी की चौड़ाई 92.310 मी. है।

तीसरे सवाल में, मान लीजिए कि सर्वेक्षक ने दो बिंदुओं ब और स, जो कि दो बड़े वृक्षों द्वारा दर्शाए गए हैं (चित्र 42), के बीच की दूरी पहले ही ज्ञात कर ली है। वह अ ब, अ स तथा अ द की लंबाइयों को निकालना चाहता है। पर चूंकि बिंदु अ तक उसकी पहुंच नहीं है, वह इन दूरियों को सीधे-सीधे नहीं माप सकता। मगर कोणों अ ब स और अ स ब को तो वह माप ही सकता है।

अब मान लीजिए कि ब स की लंबाई 100 मी. है तथा कोण अ ब स = 60° और कोण अ स ब = 50°। त्रिकोणमितीय सारणियों की मदद से वह इन मानों को यूं निकाल लेता है : स्पर्शज्या 60° = 1, 7321 और स्पर्शज्या 50° = 1.1918। तब अ द की लंबाई को वह इस सह-संबंध द्वारा निकाल सकता है :

$$\text{अ द} = \frac{100\ (\text{स्पर्शज्या } 60^\circ \times \text{ स्पर्शज्या } 50^\circ)}{(\text{स्पर्शज्या } 60^\circ + \text{ स्पर्शज्या } 50^\circ)}$$
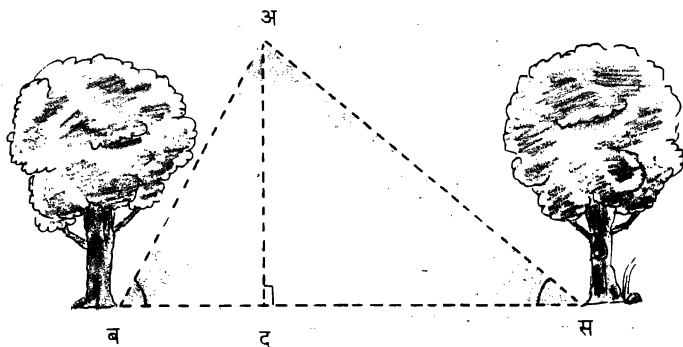
चित्र 42

$$\text{अ द} = \frac{100 \times 1.7321 \times 1.1918}{1.7321 + 1.1918} = 120.3 \text{ मी.}$$

अब अ ब एवं अ स की लंबाइयों को हम निम्न सह-संबंधों द्वारा निकाल सकते हैं :

$$\text{अ ब} = \frac{\text{अ द}}{\text{ज्या } 60^{0}}$$

$$\text{और अ स} = \frac{\text{अ द}}{\text{ज्या } 50^{0}}$$

$$\text{अ ब} = \frac{120.372}{0.8660} = 139.00 \text{ मी.}$$

$$\text{और अ स} = \frac{120.372}{0.7660} = 157.14 \text{ मी.}$$

इसी तरह के और भी कई सवाल त्रिकोणमितीय सूत्रों एवं सारणियों की मदद से हल किए जा सकते हैं। मिसाल के तौर पर किसी सुदूर मीनार या भवन या फिर किसी पहाड़ी की चोटी की ऊंचाई उनके नजदीक पहुंचे बगैर ही निकाली जा सकती है। चित्र 43 में यह स्थिति दर्शाई गई है।

किसी संकरी खाड़ी के उस पार स्थित पहाड़ी की चोटी को बिंदु स द्वारा दर्शाया गया है। खाड़ी के इस पार पहाड़ी के सम्मुखीन बिंदु अ पर खड़ा दर्शक कोण स अ ब का मान 55^{0} निकालता है।. चल कर 100 मी. की दूरी तय करते हुए वह फिर बिंदु ब तक पहुंचता है और कोण स ब द के मान को 65^{0} के बराबर पाता है। अब इन सह-संबंधों

चित्र 43

$$\frac{\text{ह}}{\text{ब द}} = \text{स्पर्शज्या } 65^{0}$$

और

$$\frac{\text{ह}}{100 + \text{ब द}} = \text{स्पर्शज्या } 55^{0}$$
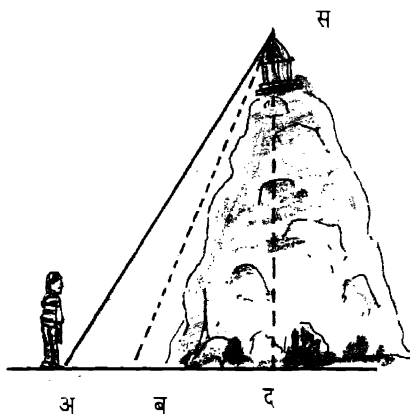
द्वारा ऊंचाई ह का मान इस तरह निकाला जा सकता है

$$\text{ह} = \frac{100 \times \text{स्पर्शज्या } 55^{0}}{\text{स्पर्शज्या } 65^{0} - \text{स्पर्शज्या } 55^{0}} \times \text{स्पर्शज्या } 65^{0}$$

$$= \frac{100 \times 1.4281 \times 2.1445}{2.1445 - 1.4281}$$

$$= 427.5 \text{ मी.}$$

अतः चोटी की ऊंचाई 427.5 मी. है। त्रिकोणमिति की उपादेयता का सबसे अपूर्व नमूना संसार के सबसे ऊंचे पर्वत शिखर माउंट एवरेस्ट की ऊंचाई ज्ञात करने में दृष्टिगत होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. ग्रह्म फ्लैग : *नंबर्स*, पेंगुइन बुक्स।
2. लेनसीलॉट हॉगबैन : *मैथेमेटिक्स फार द मिलियंस*, पाकेट बुक्स।
3. मोरिस क्लाईन : *मैथेमेटिकल थाट*, खंड I, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस।
4. जेम्स आर. न्यूमैन : *द वर्ल्ड आफ मैथेमेटिक्स*, खंड 2, टैम्पस बुक्स।
5. *मैथेमेटिक्स इन द माडर्न वर्ल्ड*, द साइंटिफिक अमेरिकन पब्लिकेशन।
6. एन. दत्ता और सिंह : *हिस्ट्री आफ हिंदू मैथेमेटिक्स।*
7. एन. एच. फड़के : *लीलावती पुनर्दर्शन* (मराठी)।
8. आर. पी. कुलकर्णी : *फोर शुल्वा-शूत्राज* (मराठी), साहित्य संस्कृति मंडल, महाराष्ट्र।

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रयल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित